मामुलिया

शोध और सृजन की प्रमुख त्रैमासिकी

अंक ६ सं० २०३९

वार्षिक सहयोग : १५ रु०

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन

सांस्कृतिक प्रतिमान की प्रतीक

बुन्देलखंड साहित्य अकादमी से प्रकाशित मामुलिया नामक त्रैमासिक पत्रिका अपने आप में एक सांस्कृतिक प्रतिमान की प्रतीक है। इसके अन्तर्गत बुन्देली क्षेत्र के लोकजीवन, लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य पर बड़ा महत्वपूर्ण और रुचिकर प्रकाशन होता रहता है, परन्तु इसका चतुर्थ अंक विशिष्ट महत्व का है। यह फाग विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है, जिसका पुस्तकाकार रूप-बुन्देली फागकाव्य है। इसमें अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं। इसके अन्तर्गत १४ शोधलेख हैं, जो बुन्देली फाग साहित्य के विविध पक्षों को उजागर करते हैं। इनमें से अनेक लेख बड़े रोचक और सूचनापूर्ण हैं। इसका दूसरा खंड फाग-संग्रह है, जिसमें प्रसिद्ध बुन्देली फाग रचनाकार ईसुरी की फागों को छोड़कर अन्य अनेक फाग रचयिताओं की फागों का संग्रह है। इसके अन्तर्गत फागों के विभिन्न स्वरूपों पर भी प्रकाश डाला गया और नयी फागों के विशिष्ट पक्षों को स्पष्ट किया गया। ये नयी फागें पर्याप्त रूप में आधुनिक संदर्भों से जुड़ी हुई हैं।

एक और विशेषता इस ग्रंथ की है कि इसमें दो फागों को स्वरलिपि में बद्ध किया गया है, जिससे फाग-गायन की परम्परा और प्रक्रिया को समझा जा सके। यह स्वरलिपि बड़ी उपयोगी है। बुन्देली फाग के इन अनेक पक्षों को प्रकाश में लाकर इसके संपादक ने बड़ा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्य पूरा किया है। हम आशा करते हैं कि बुन्देलखंड साहित्य अकादमी से इस प्रकार के प्रकाशन बराबर निकलते रहेंगे।

—डा० भगीरथ मिश्र

मामुलिया

वर्ष २ अंक ६

- सम्पादक : डा० नर्मदा गुप्त
- सहसम्पादक : डा० वीरेन्द्र निर्झर
- सम्पादन सहयोग : डा० बलभद्र तिवारी, डा० कृष्णकुमार हूंका, सुरेन्द्र शर्मा, हरिसिंह घोष
- समाचार-सम्पादन : श्री वीरेन्द्र शर्मा कौशिक

शोधलेख

कहानियां/संस्मरण

कविताएं

• सम्पादकीय : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुक्लाना मुहाल, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०

• व्यवस्थापकीय : बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर—४७१००१ म० प्र०

प्रकाशक एवं मुद्रक : डा० वीरेन्द्र निर्झर, मंत्री बुन्देलखंड साहित्य अकादमी, छतरपुर के लिए श्री विष्णु आर्ट प्रेस, २५७ चक इलाहाबाद २११००३ में मुद्रित

उदारमना सहयोगी

- **अकादमी के संरक्षक सदस्य**
  - श्री दुलीचंद भाई पालन, पालन सदन, पंचशील कालोनी, चेरीताल, जबलपुर, म० प्र०
  - श्री चन्द्रदीप नारायण बड़ेरिया, लकी बिस्कुट कम्पनी, हाजीगंज, पटना, बिहार
- **पत्रिका के आजीवन सदस्य**

छतरपुर : सर्वश्री श्रीमती कमलेश अग्रवाल, हरिसिंह घोष, वीरेन्द्र शर्मा कौशिक, श्रीमती प्रमोद पाठक, नर्मदा प्रसाद गुप्त, चिरंजीव अग्रवाल, श्रीमती कांति खरे, महेशचंद्र चोरसिया, घासीराम सेठ, अरुण श्रीवास्तव, सुरेन्द्र शर्मा, परमलाल अग्रवाल, बाबूराम चौरसिया एण्ड कम्पनी, विजयबहादुर ताम्रकार, कौशल किशोर दिनेश कुमार, सुरेन्द्र तिवारी, डा० डी० एच० लाल 'सरल' केदार नाथ रावत, चिरौंजी लाल अग्रवाल, चौधरी स्वामी प्रसाद अग्रवाल, संतोष कुमार सर्राफ, श्रीराम सर्राफ, रामनाथ गुप्त 'हरिदेव', श्रीमती ललिता देवी सोनी, मोतीलाल नेहरू विधि महाविद्यालय, बाबू कन्हैया लाल अग्रवाल, भैयालाल व्यास, स्वामीशंकर मिश्र, भगवानदास घोष,

महोबा : सर्वश्री डॉ० वीरेन्द्र निर्झर, बाबूलाल गुप्त, श्रीकृष्ण चौरसिया
उज्जैन : श्री ब्रजलाल मिश्र
कर्री : श्री आशाराम त्रिपाठी
पिपट : डा० नाथूराम चौरसिया
टीकमगढ़ : श्री वीरेन्द्र शर्मा
पृथ्वीपुर : श्री रतिभान तिवारी 'कंज'
भोपाल : श्री प्रेमनारायण रूसिया
महाराजपुर : श्री बद्री प्रसाद गुप्त
जबलपुर : डा० कृष्ण कुमार हूँका, डा० राजेन्द्र त्रिवेदी

कबरई : श्री किशोरी लाल गेड़ा, श्री मोतीलाल गुप्त
उरई : श्री रामनारायण अग्रवाल
दतिया : डा० कृष्णबिहारी लाल पाण्डेय
दमोह : श्री वीरेन्द्र कुमार इटोरया
कलकत्ता : श्री रघुनाथ दास अग्रवाल
वाराणसी : श्री देवेन्द्र कुमार सिंह
सागर : श्री माधव शुक्ल 'मनोज'
देवेन्द्रनगर : श्री सुरेश 'पराग'

टीप— जिन उदारमना महानुभावों की सूची हमें प्राप्त हुई है, उन्हीं के नाम यहां प्रकाशित किये गए हैं।

• अकादमी की संरक्षक सदस्यता—मात्र एक हजार रुपए
अकादमी की आजीवन सदस्यता—मात्र पांच सौ रुपए
पत्रिका की आजीवन सदस्यता—मात्र एक सौ रुपए
अगर आप चाहते हैं कि
बुंदेलखण्ड की संस्कृति, साहित्य एवं कला
प्रकाश में आए तो
अपना उदार सहयोग प्रदान करने का कष्ट करें।

पत्रिका के प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें
(फाग अंक की सूची के बाद)

२२. सागर : श्री माधव शुक्ल 'मनोज' परकोटा, सागर एवं डा० बलभद्र तिवारी, पुरवयाऊ टौरी, सागर, म० प्र०
२३. डवरा : श्री प्रेमनारायण बिलैया, दमोह, म० प्र०
२४. देवेन्द्रनगर : श्री सुरेश 'पराग' देवेन्द्रनगर, जिला पन्ना, म० प्र०

अपने मन मानिक के लानें

सुगर जौहरी चानें

सत्ता और संस्कृति : बहस दर बहस

निराला सृजन पीठ भोपाल की एक गोष्ठी में दिये गए और नई दुनिया के १४ जून के अंक में प्रकाशित कवि और आलोचक अशोक वाजपेयी के 'सत्ता और संस्कृति' पर व्याख्यान के संबंध में बहस का एक सिलसिला शुरू हो गया है। बहस कोई बुरी चीज तो है नहीं, लेकिन उसकी सार्थकता 'सोच' जगाने में है, किसी आग्रही हमलेवर या खुशामदी समर्थक की चखचख में नहीं। मैं समझता हूं कि इसे संयमित संतुलन से तौलने की जरूरत है, पासंगों से गलत निर्णय निकल सकते हैं।

नई दुनिया के 'सत्ता, संस्कृति के बीच द्वंद्व हो, तलाक नहीं (पूरा भाषण मुझे मालूम नहीं) के लेख में वाजपेयी जी ने जहां एक तरफ कुछ सैद्धान्तिक बातें की हैं और सवाल उठाए हैं, वहीं दूसरी तरफ मध्य प्रदेश में किये गए सांस्कृतिक कार्यों के पीछे सत्ता के (उसमें कितना उनका भार है और कितना सत्ता का ?) नजरिये को स्पष्ट करने की कोशिश की है। यह सिद्धांततः ठीक है कि 'सत्ता पर निर्भरता कलाओं और साहित्य के लिए घातक है' अथवा 'सत्ता से निकटता या उसका विरोध सृजनात्मक प्रतिभा की कमी या उपलब्धि के अभाव की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकता' या 'सत्ता सीमाओं का किसी भी हालत में अतिक्रमण न कर सके ऐसा दबाव उस पर बुद्धिजीवियों द्वारा बनाये रखना लोकतंत्र के लिए जरूरी है'। इन तीनों में पहली दो तो तटस्थता का संकेत करती हैं, पर तीसरी में दबाव की अनिवार्यता द्वंद्वमूलक स्थिति उत्पन्न करती है। कलाकारों और साहित्यकारों या बुद्धिजीवियों के दबाव को सत्ता का सहन करना कितना मुश्किल है, यह तो लेखक ने स्वयं महसूस किया होगा। कभी-कभी तो सत्ता वर्ग की संस्कृति अपने विशिष्ट दर्शन को लादने की योजना बनाती है और ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवियों की आजादी तक खतरे में पड़ जाती है। खासतौर से जब सत्ता या उसके पीछे समर्थन करने वाली प्रतिसत्ता किसी सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के लिए कटिबद्ध हो, तब कुछ

खतरे साफ दिखाई पड़ते हैं। दरअसल सत्ता वर्ग की संस्कृति चाहे जितनी सुचिन्तित और सुविचारित हो, एक अलग संस्कृति होती है। उसकी जड़ें लोक की भूमि में नहीं होतीं, वह अधर में लटके गुलदस्ते की तरह प्यारी लग सकती है, पर जमीन से फूटने वाले सहज जीवन का सौन्दर्य उससे कोसों दूर रहता है। इसलिए सबसे बड़ा खतरा यह है कि कहीं ऊपर से थोपी संस्कृति कोई ऐसा सांस्कृतिक ह्रास (कल्चरल लैग) न ला दे, जो इस संक्रमण काल में एक कैन्सर बना दे।

सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में सांस्कृतिक शक्ति (कल्चरल फोर्स) जरूरी है क्योंकि परिवर्तन का केन्द्रविन्दु वही होती है। इस तथ्य से सहमत होने में भी कोई हर्ज नहीं है कि सत्ता भी सांस्कृतिक शक्ति की भूमिका अदा कर सकती है, लेकिन ऐसी दशा में उसे देश की सारी संस्कृति की ऊर्जा अपने भीतर समेटनी होगी। सत्ता सांस्कृतिक शक्ति न भी बने, फिर भी वह सांस्कृतिक एजेंसियों में एक प्रभावी एजेंसी है, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता और यह भी सोलहों आने सही है कि सत्ता जैसी एजेंसी के साथ संस्कृति का द्वंद्व हमेशा होता रहता है, उसे तलाक देना या बिल्कुल छोड़ देना नामुमकिन है। इस कारण लेखक को ऐसी संभावना तो करनी ही नहीं चाहिए। वैसे यह स्वीकारने में कोई कठिनाई नहीं है कि संस्कृति का दिशा-निर्देश सांस्कृतिक शक्ति करे और उस दिशा में निरन्तर विकास होने की कुछ जिम्मेदारी सत्ता भी ले। सत्ता का तटस्थ सहयोग निश्चित ही स्तुत्य माना जाएगा। यह अलग बात है कि व्यावहारिक रूप में सत्ता कितनी तटस्थता रख सकती है।

अब रहा मध्य प्रदेश के सांस्कृतिक कार्य का लेखा-जोखा या उसके पीछे उसकी बौद्धिक भूमिका की बात। शास्त्रीय संगीत, नृत्य आदि कलाओं के लिए जो कार्य इस प्रदेश में किया गया है, वह घटिया कला-प्रदर्शनों और उनसे उपजने वाले परिणामों की तुलना में निश्चित ही बेहतर है और ऐसा प्रयास हमेशा चालू रहना चाहिए। अगर आपको यह विश्वास न हो कि उसमें कलाकारों की निर्णायक भूमिका है अथवा उसमें सत्ता का कोई स्वार्थ निहित नहीं है, तो भी आप उसे सत्ता का सांस्कृतिक-कार्य मानकर संतोष कर सकते हैं, लेकिन उस कार्य के अस्तित्व को नकार नहीं सकते। उसके औचित्य या परिणाम या प्रभाव की आलोचना करने के लिए बुद्धिजीवी स्वतंत्र हैं और सत्ता भी। आलोचना यदि तटस्थ दृष्टि से या बिना किसी पक्षपात के की गयी है, तो सत्ता भी उससे सबक ले सकती है और उस कार्य में भागीदार कलाकार भी। हाँ, यदि आप उसे ही संस्कृति का मूल कार्य मान लें, तो बात अलग है। इन कार्यों से यदि कला को कोई खतरा है या उसके

विकास में रुकावट है, तो उनका महत्व रहेगा ही नहीं और रहता भी है, तो उसे नकारने का बीड़ा लोक को उठाना पड़ेगा।

यहाँ एक बात कहना संभवतः प्रासंगिक है कि अभी तक शास्त्रीय कलाओं को ज्यादा महत्व दिया गया है, लोक संस्कृति या लोककलाओं को नहीं। संस्कृति का मूल स्रोत लोकसंस्कृति या लोककलाओं में है और संस्कृति या साहित्य के हर संक्रमण में उनकी भूमिका सर्वाधिक महत्व की है। इसलिए उन पर ध्यान रखना ज्यादा जरूरी है। लोकसंस्कृति, साहित्य और कला के विकास के लिए स्वतंत्र रूप से जो किया जा रहा है, वह भी एक विशेष महत्व रखता है, और उसे भी नजर अंदाज नहीं किया जाना चाहिए।

संस्कृति और लोकसंस्कृति : पुनर्निर्माण का सवाल

इसी सिलसिले में यह कहना आवश्यक है कि संस्कृति और लोकसंस्कृति के बीच कोई विरोध का सवाल नहीं है। विविध लोक संस्कृतियों के समान विश्वासों, आस्थाओं, मूल्यों आदि से संस्कृति बनती है और बनने की यह सहज प्रक्रिया में वैसे ही चलती है जैसे किसी पौधे से फूल का प्रस्फुटन। जब लोक बदलता है, तब लोकसंस्कृतियाँ बदलती हैं और फिर संस्कृति। इस लम्बी और सहज, लेकिन विशिष्ट प्रक्रिया में लोक ही प्रधान है, अन्य कोई संस्था नहीं। लोक के बदलने पर धीरे-धीरे लोकसंस्कृति में बदलाव आता है और जब लोकसंस्कृतियाँ अपने परिवर्तित रूप में पूरा अस्तित्व बना लेती हैं, तब संस्कृति का पुनर्निर्माण संभव होता है। मतलब यह है कि सांस्कृतिक पुनर्निर्माण कोई साधारण बात नहीं। उसके लिए लोक और लोकसंस्कृति की भागीदारी से इन्कार करना संभव नहीं है। इसीलिए सांस्कृतिक शक्ति (कल्चरल फोर्स) दोनों पर ही अपना वर्चस्व स्थापित करती है।

लोकसंस्कृति और लोककला : मंच की पहल

लोकसंस्कृति में जहाँ लोकमूल्यों और लोकसंस्कारों का महत्व है, वहाँ लोकसाहित्य और लोककला का भी। इधर बीसवीं शती के इस संक्रमण-काल में एक तरफ लोकमूल्यों और लोकसंस्कारों को नकारने का रिवाज-सा हो गया, तो दूसरी तरफ लोककलाओं को अनदेखा किया जाने लगा। लेकिन इधर संस्कृति और कला में कुछ नवीनता देने के लोभ में उनसे कुछ पूछा जा रहा है, जबकि असलियत यह है कि उनके बिना कोई बदलाव नहीं आ सकता। उन्हें नगरी मंच की चकाचौंध में खड़ा किया गया, फल-

स्वरूप एक वर्ग ने उन्हें मनोरंजन का साधन समझकर स्थान दिया, तो दूसरे ने अपने कर्तव्य की इतिश्री मानकर उपेक्षित भोले लोककलाकार इतना ही आश्रय पाकर अपने को धन्य समझने लगे और होड़ के लिए दौड़ने लगे। लेकिन क्या इन लोककलाओं और उनके कलाकारों को कभी कोई मंच दिया गया या मंच देने की कोई पहल की गयी ? शायद इसका उत्तर जरूरी न समझा जाएगा, क्योंकि जरूरी माना भी नहीं जाता। किसी भी वर्ग में नहीं। सब अपने-अपने फतवों के लिए हथियार टेये बैठे हैं, फिर लोकमंच की सड़ीगली-सी बात कौन सुने। वास्तव में लोकमंच के लिए लोक को आना पड़ेगा और यदि आप इसे जरूरी समझते हों, तो आइए सब एकजुट होकर कोशिश करें।

सम्पादक

———

एक बेर श्याम ब्रज में आवें

स्व० गंगाधर व्यास

[संरगायकी के पुरस्कर्ता कवि गंगाधर व्यास की एक ऐसी रचना जो उनकी 'झुमका' शैली से मेल न खाने के कारण बहुत पहले की जान पड़ती है, यहाँ उनके समकालीन कविवर रामदास नामदेव की हस्तलिखित प्रति से उद्धृत की गयी है। इस दृष्टि से वह प्रामाणिक है और ऐतिहासिक महत्व की भी है। काव्यात्मकता में कम नहीं है। बल्कि इस रचना में कवि की गोपियों की मनुहार बिल्कुल अपने ढंग की नवीनता लिये हुए है।
—सम्पादक]

बिनय हमारी श्याम सें, कइयो हित के साथ।
ऊधौ जू ब्रज आपके, फेर बसें ब्रजनाथ॥
फेर बसें ब्रजनाथ, ब्रजबासिन के कारनें।
जुगल जोर कें हाथ, कइयो गोपिन की कही॥

समझाय बचन कइयो जो तुमकों भावें।
हर बिना भई जो गत सो किये सुनावें।
दें जायँ दरस जासें जे नैन जुड़ावें।
ऊधौ जू एक बेर श्याम ब्रज में आवें॥

बे चाह करें हमरी या नाहीं चावें।
तज गोपिनाथ कुबजा के नाथ कहावें।
हमखाँ न अनक उतै बने सुख सें रावें।
ऊधौ जू एक बेर श्याम ब्रज में आवें।

ना जायँ कभउँ मधुबन ना धेन चराबें।
ना रागनी उचारें न बेनु बजाबें।
कर कोमल सें अब ना गिरराज उठाबें।
ऊधौ जू एक बेर श्याम ब्रज में आबें॥

मनभावन सें पाँउन जावक न दिवाबें।
ना मान करें कबहूँ बेनी न गुहाबें।
हम औगुन ना उनके काऊ खों जताबें।
ऊधौ जू एक बेर श्याम ब्रज में आबें॥

बरजें न दही खातन बे सबकौ खाबें।
ना दैन खाँ उरानो जसुदा कें जाबें।
ना भूल कभी रसरी सें पाँव बँधाबें।
ऊधौ जू एक बेर श्याम ब्रज में आबें।

जननी के हाँथ उन हित ना छड़ी गहाबें।
ना ताड़ना कराहैं ना झाम दिखाबें।
माखन मलाई अपने हाँतन सें खबावें।
ऊधौ जू एक बेर श्याम ब्रज में आवें॥

गोदोहन के काज नहीं प्रात जगावें।
हम अब न रास मंडल में नाच नचावें।
ना बाँसुरी चुराबी ना बिनै करावें।
ऊधौ जू एक बेर श्याम ब्रज में आवें॥

वे काज करें मन के जो उनें सुहाबें।
ना मानें तौ संगे कुबजा खाँ ल्यावें।
कयँ 'गंगाधर' दीन जान दरस दिखावें।
ऊधौ जू एक बेर श्याम ब्रज में आवें॥

[स्व० रामदास नामदेव की हस्तलिखित प्रति से]

—०—

चंदेलों की उत्पत्ति

स्व० दिवान प्रतिपाल सिंह जू देव

[दिवान प्रतिपाल सिंह जू के अप्रकाशित ग्रन्थ 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' के चौथे खण्ड से यह अंश यथावत उद्धृत है। चंदेलों की उत्पत्ति अभी तक विवादग्रस्त रही है, इस लेख से शायद इतिहासकारों को कुछ उपलब्ध हो। उत्पत्ति के संबंध में लेखक का अपना मत भी महत्वपूर्ण है। लेख को थोड़ा और स्पष्ट करने के लिए टिप्पणियाँ दी गयी हैं, जो मूल लेख में नहीं हैं। अकादमी की योजना है कि यह ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो और वह शासन एवं धनाढ्यों से उदारता की अपेक्षा करती हुई शीघ्र सहायता देने हेतु उन्हें आमंत्रण भेजती है। —सम्पादक]

(अ) स्थानीय मत

प्रान्तभर की किवदंतियाँ अथवा स्थानीय पुस्तकें प्रकट करती हैं कि इस शाखा का मूल पुरुष चन्द्रब्रह्म था और उसके जन्म के सम्बन्ध में यह कहा या लिखा गया है कि काशी बनारस के गहरवार राजा इन्द्रजीत के पुरोहित अथवा कोई एक हेमराज नामक ब्राह्मण की कन्या हेमवती[1] थी। वह रूपवती विधवा अथवा कुमारी युवती थी। एक रात को वह मकान की छत पर सोई थी कि चन्द्रमा उसको देखकर उस पर आशक्त हुआ और उसने मनुष्य रूप धारण कर उसी अचेतन अवस्था स्वप्नावस्था में उससे संभोग किया। जब वह जाने लगा, तो हेमवती को चेत हुआ और उसने उसे पकड़ लिया और कहा कि 'तुमने मेरा सतीत्व भंग किया है। संसार में मुझे कलंक लगेगा। अतएव मैं श्राप देती हूँ अथवा अपघात करती हूँ।"—तब चन्द्रमा ने चिकनी-चुपड़ी बातों से उसको

१. हेमवती, चंदेल और उनका राजत्व-काल, केशवचन्द्र मिश्र, पृ० ३५ लेकिन लेखक द्वारा 'हेमवती' किन ग्रन्थों से लिया गया है, अज्ञात है। वैसे अर्थमयता की दृष्टि से दोनों सार्थक हैं।

परितोष देकर कहा कि 'द्वापर में श्री कृष्णचन्द्र जी ने चन्द्रवंश का नाश करा दिया था। इस पर मैंने उनसे प्रार्थना की थी, तो उन्होंने कहा था कि कलियुग में हेमवती के गर्भ से तुम्हारा वंश फिर चलेगा। अतएव तुम्हारे बहुत प्रतापी पुत्र होगा, और उसका बड़ा राज्य होगा।'

चन्द्रदेव इस प्रकार समझाकर तथा अपना आवाहन मन्त्र बतला कर चलते हुए। एक हस्तलिखित पुस्तक में गहरवार का नाम हरिसिंह देव और पुरोहित का नाम हेमराज मनीराम लिखा है। गोत्र अत्रि लिखा है।

इधर कुछ मास उपरान्त जब गर्भ का उदोत हुआ, तो उसके पिता हेमराज को उसका पता लग गया। वह बेटी की यह दशा देख लोकापवाद का सामाजिक भय और लज्जा से बहुत चिन्तायुक्त हुआ। अंत में कलंक को छिपाने के लिये तीर्थयात्रा के बहाने काशी से चलकर एक बीहड़ बन में हेमवती को अकेला छोड़ गया। गर्भिणी अबला बड़े दुःख से पैदल चलती हुई विंध्यवासिनी देवीजी के स्थान (मिर्जापुर) में पहुँची। वहाँ के चित्रकूट, सोरसिन (रसिन), कालिंजर होती हुई बाँदा जिले के करतल के पश्चिम ५ मील तथा कर्णवती अर्थात् केन नदी से ४ मील पूर्व चाँदीपाठा गाँव में पहुँची। वहाँ उसे एक संमत नाम ब्राह्मण के परिवार (जो अब मनियाँ कहलाते हैं) से बहुत सहायता मिली। अतएव वह उसका आश्रय पाकर वहाँ रहने लगी। यहाँ पर उसके गर्भ के दिवस पूर्ण हुए, और पुत्र का जन्म हुआ, तब हेमवती ने चन्द्रदेव का आवाहन किया और वे आये। सब की सलाह से बालक का नाम चन्द्रब्रह्म[1] रखा गया। उस समय चन्द्रमा ने बालक के लिये वर दिये कि निम्न चार नियम पालते रहने से इसके घराने में १००० पीढ़ी तक राज्य रहेगा—

१—प्रत्येक राजा के नाम के साथ ब्रह्म शब्द रहे।

२—कोई राजा ब्रह्म-हत्या न करे।

३—कोई राजा मदिरा पान नहीं करे और काना, कोढ़ी का संपर्क या दर्शन बचाता रहे।

४—कोई राजा वेश्या-प्रसंग और कुसंगति नहीं करे।

१. चन्द्र के साथ 'वर्मा' लगाने वाली जनश्रुतियों की अपेक्षा 'ब्रह्म' लगानेवाली जनश्रुतियाँ अधिक प्रचलित हैं। कवि हरिकेशकृत 'जगतराज की दिग्विजय' एवं अन्य हस्तलिखित ग्रन्थों में 'ब्रह्म' ही लिखा गया है।

उपरोक्त वर तथा सब द्रव्यों की देने वाली एक पारसमणि हेमवती को देकर चन्द्रमा चले गये। हेमवती उस मणि की पूजा अपने आश्रयदाता ब्राह्मण से कराती और उससे प्राप्त द्रव्य से अपना निर्वाह करती थी। इसी मणि के संरक्षक और पूजक होने से वह ब्राह्मणकुल मनिया कहलाया था तथा हेमवती के प्रति अपने सुव्यवहार के कारण वह संमत नाम का मणियाँ ब्राह्मण कुलदेव सदृश्य मणियाँदेव नाम से माना गया था। मणियादेव का मूल निवास स्थान मनियागढ़ (राजगढ़-छत्रपुर) भी कहा जाता है।[1]

स्थानीय किंवदंतियों तथा पुस्तकों के मत से इस प्रकार पैदा हुआ यह बालक 'चन्द्रब्रह्म' नाम से 'चंदेल वंश का मूल पुरुष' माना जाता है। खजुराहो के चंदेल जमींदार हेमवती का आश्रय न लेकर अपना प्रादुर्भाव निकट के मनियाँगढ़ से होना बतलाते हैं।

(इ) विभिन्न मत

बुन्देलखण्ड के गहरवारों का वंशज-संबंध कन्नौज के गहरवार-राजवंश से होने के कारण मौजूद है। इसी गहवार वंश से चंदेलों का वंशज-संबंध होने के भी संकेत हैं।

सब राजपूतों के समान चंदेलों की उत्पत्ति का क्रम भी अनिश्चित-सा है। कथानकों से उनकी उत्पत्ति का भेद निकाल लेना असंभव-सा है। स्वयं चंदेल अपने को काशी के गहरवार राजा इन्द्रजीत के पुरोहित हेमराज ब्राह्मण की कन्या हेमवती तथा चन्द्रमा के संयोग से उत्पन्न होना कहते हैं। उस संयोग से चंदेलों का मूल पुरुष चन्द्रब्रह्म जन्मा था। परलेखों में उनकी उत्पत्ति की कथा से भास होता है कि उसमें कोई भेद है। कदाचित उनको 'वंशज' महत्त्व देने के अभिप्राय से ही प्रतापी चन्द्रवंश के पुरुष तथा उच्च ब्राह्मण कुल की स्त्री के संसर्ग से उनके उत्पन्न होने की कथा गढ़ी गई थी। इस प्रकार उनको प्रख्यात चन्द्रवंश में शामिल किया गया था। यह कथा कदाचित उनका वर्णशंकरी दोष दबाने को गढ़ी गई थी।

खजुराहो के चंदेल जमींदार अपने वंश की उत्पत्ति खजुराहो के निकट के मनियागढ़ (राजगढ़) से मानते हैं। खजुराहो से १० मील दक्षिण केन नदी के किनारे राजगढ़ में एक प्राचीन भग्न पहाड़ी किला है। मनिया देवी का मंदिर

१. विवरण के लिए देखें, आर्क्यलाजिक सर्वे रिपोर्टस्, भाग २।

उस किले के पहाड़ पर है। इसी से उस स्थान का नाम मनियागढ़ पड़ा था। यह मनिया देवी चन्देलों की कुल देवी थी। अतएव इस कुल देवी के सम्बन्ध से खजुराहो के चंदेलों की बात का समर्थन होता है।

कवि चंद मनियागढ़ में गौंड़ राजा का होना लिखता है तथा साथ ही चंदेलों से पहले गहरवारों का राज्य महोबा में होने की कथा है। यहां के गहरवारों का कन्नोज काशी के गहरवार राजवंश से सम्बन्ध होने के इशारे हैं। इससे भास होता है कि संभवतः चदेलों के मूल पुरुष की उत्पत्ति गहरवार पुरुष और स्थानीय गौंड़ राजा की पुत्री के संयोग से हुई थी। उनका प्रादुर्भाव ९वीं० श० ई० के आरम्भ में हुआ था। वे पश्चिम से नहीं आये थे। उनकी उत्पत्ति स्थानीय थी। वे गौंड़ों के बीज से प्रकट हुए थे। कदाचित वे राजपूत पुरुष और किसी अनार्य जाति की स्त्री के संयोग से पैदा हुए थे अथवा अनार्य जाति के स्त्री पुरुष से ही उत्पन्न हुए थे।

कदाचित चंदेल गौंड़ ही थे अथवा उनसे वर्णशंकरी सम्बन्ध रखते थे। इस देश भर में बहुत से तालाब गौड़ों के बनाये भी कहे जाते हैं। इससे यहां उनका बाहुल्य होना प्रमाणित है।[1] कदाचित चंदेलों के समान ही त्रिपुरि या तेवर (जबलपुर के निकट) के राजा चेदि के हैहय कलचुरि वंश की उत्पत्ति भी थी। आगे चलकर चंदेलों ने कलचुरियों तथा गौंड़ों (दुर्गावती-दलपति शाह) से ब्याह-सम्बन्ध किये थे। कोई चंदेलों को राठौरों की शाखा भी कहते हैं।

फतहपुर गजेटियर में लिखा है कि चंदेल पहले मालवा से आकर कालिंजर में बसे थे। वे कालिंजर में आठ पीढ़ी तक रहे थे, फिर महोबा आये थे। वहां से कन्नोज गये थे। फिर पीछे वे शिवराजपुर सचेंड़ी में बसे थे। कानपुर गजेटियर में लिखा है कि उस जिले के जुझौता गांव में चन्द्रब्रह्म उत्पन्न हुआ था (कदाचित इस जुझौता गांव से चन्द्रब्रह्म, जुझौतिया ब्राह्मण तथा जुझौति देश नाम से कुछ संबंध हो)। सेन्ट्रल इण्डिया सेंसस रिपोर्ट (१९०१) में लिखा है कि चंदेल महोबा से आये थे उन्होंने प्राचीन गौड़ों से राज्य छीना था, परन्तु मुसलमानों के बढ़ने पर स्वयं नष्ट हो गये थे।

---

1. देखिए, इंडियन ऐंटिक्वेरी, १९०८, भाग ३७ पृ० १३६-३७ में वी० ए० स्मिथ का मत।

इस प्रकार चन्देलों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में (१) चंद रासा तथा स्थानीय पुस्तकों में बनारस से आकर कालिंजर के निकट चांदीपाठा में चन्द्रब्रह्म के जन्म ने, (२) खजुराहो के जमींदारों की कथा में मनियागढ़ से पैदा होने, (३) स्थानीय वंशावली के चंदेरी के शिशुपाल वंश में होने, (४) कानपुर गजेटियर में जुझौता में उत्पन्न होने, (५) फतहपुर गजेटियर में चन्देलों का मालवा से उधर जाने, (६) झांसी के शिलालेख-खंड में सीधुक, मामक से आगे वंश चलने तथा (७) शिलालेखों में चन्द्रात्रेय और नन्नुक से यह वंश होने और (८) विविध ऐतिहासिकों का कई प्रकार के मत प्रगट करने आदि के विभिन्न मत हैं। जो कुछ भी हो सब राजपूतों कुलों के समान चंदेलों की उत्पत्ति का भी विश्वसनीय पता नहीं है। कथानकों से उसका यथार्थ भेद सुलझा लेना बहुत कठिन है।

[उ] ऐतिहासिक मत

चंदेलों की धार्मिक राजधानी खजुराहो, शांति समय की राजधानी महोबा, युद्ध के समय के गढ़ कालिंजर, अजेगढ़, चंदेरी आदि बुन्देलखण्ड के भागों में स्वयं चंदेलों के तथा अन्य पड़ोसी राजाओं और प्रजा के कई एक शिलालेख पाये गये हैं। उनको बहुत परिश्रम से पढ़कर व सबको मिलाकर इस वंश का बहुत कुछ मुख्य-मुख्य वृत्तान्त संग्रह किया गया है तथा उससे अधिक मान्य वंशावली और इतिहास समय-समय पर निकाले गये हैं। उनसे समय आदि निश्चयपूर्वक ज्ञात हुए हैं। उनसे प्रगट है कि स्वयं चन्देल राजा अपना उद्गम ब्रह्मा के पुत्र अत्रि, अत्रि के पुत्र चंद्र तथा चंद्रात्रेय के कुल के 'नन्नुक नाम व्यक्ति से मानते थे। "नन्नुक" से आगे राजाओं के नाम उनमें क्रम से दिये हैं तथा उनकी कीर्ति के सम्बन्ध में ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है कि जिससे राजाओं का समय स्थिर हो सकता है। अतएव इस प्रकार शोध से चंदेलों का मूल पुरुष "नन्नुक" माना गया है। नन्नुक के पिता माता के नाम उन लेखों में नहीं पाये जाते हैं। निदान चंदेल वंश सम्बन्धी शिलालेखों[1] में इस वंश की वंशावली के आरम्भ का क्रम इस प्रकार मिलता है—

ब्रह्मा→अत्रि→चन्द्र→चन्द्रात्रेय→नन्नुक्—वाक्पति।

उन लेखों में चन्द्रब्रह्म का नाम नहीं मिलता है। लगभग यह क्रम यही त्रिपुरि (चेदि) के पिछले हैहय या कलचुरि वंशी राजाओं की वंशावली का

---

1. एपिग्रेफिया इंडिया, भाग १, पृ० १२८, १२७, १३७।
वही भाग १६, पृ० ९। वही भाग १, पृ० २१७।

है—जो २४६-५५० ई० के निकट से कालिंजर में जमे हुए थे। उस समय में इस प्रान्त में केवल एक इसी चन्द्रवंश के होने का पता लगता है। कथानकों में चन्देल वंश का मूल पुरुष चन्द्रब्रह्म और उसके पिता माता चन्द्रमा और हेमवती तथा उसकी उत्पति का भेद बतलाया गया है।

इतिहास में मूल पुरुष नन्नुक लिखा उसके माता-पिता के नाम तथा उत्पत्ति का भेद आदि कुछ नहीं मिलते है, परन्तु चन्द्रवंश का संबंध दोनों ही मत लिये हैं। इस प्रकार कोई चंदेलों को राठोरों की शाखा, कोई गहरवारों की शाखा, कोई राठोरों और गहरवारों का एक होना, कोई मनियागढ़ की कथा तथा दुर्गावती के संबन्ध के कारण गोड़ों का वंशज कोई सम्बन्धों के कारण हैहय कलचुरियों का वंशज सम्बन्धी, कोई ब्राह्मण से उत्पन्न कोई चन्द्र चन्द्रात्रेय का वंशज आदि कहते हैं। परन्तु किसी ने अभी तक मोखरियों से उनका कोई संबंध नहीं बतलाया है। यथार्थ में कन्नौज के मोखरि सम्राट वंश के समय (५००-८१० ई०) में ही उनके साम्राज्य के भाग जेजाकभुक्ति या जुझौति अथवा बुन्देलखण्ड के पूर्व पहाड़ी प्रान्तों में, चेदि कालिजर के चन्द्रवंशी चेदियों या कलचुरियों के बीच में चन्देलों ने उत्पन्न होकर अपनी सत्ता जमाना आरम्भ किया था। बुन्देला तथा चन्देल वंशावली और कथाओं के साम्य से प्रतीत होता है कि इन्द्रजीत गहरवार यथार्थ में इद्रायुध मोखरि (७७०-८००) था। यह न माना जावे, तो इन्द्रजीत गहरवार का कोई पता लगता नहीं है। इसी सभय बुन्देलखण्ड में गहरवार और परिहार होना भी कहा गया है। पहले दिखलाया गया है कि मोखरि और गहरवार एक ही थे। उस समय विंध्याचल अथवा प्रायः समस्त बुन्देलखण्ड में गोंड़ और जुझौतिया ब्राह्मण निवासियों और भूमियों का भी बाहुल्य था। पीछे कलचुरियों और गोड़ों से उनके वैवाहिक प्रमाण भी हैं। इन्हीं के बीच में इन्हीं की भूमि दबाकर चन्देल बढ़े थे। अतः उनसे किसी प्रकार का वंशज या जातीय अथवा सामाजिक संबंध हुए बिना अपनी उन्नति कर लेना चन्देलों के लिये सहज नहीं होता। पूर्वाधिकारी चन्द्रवंशी चेदियों कलचुरियों के बीच में उत्पन्न तथा उन्नत हुए चन्देल भी चन्द्रवंशी थे। इन दोनों कुलों के सिवाय और कोई अन्य चन्द्रकुल उस समय यहां नहीं था। साथ ही एक ब्राह्मण कुल का पश्चिम बुन्देलखण्ड में गुप्तों के समय से होने का पता चलता है। हर्ष-काल तक उसका कुछ धुधला-सा सूत्र मिलकर फिर वह सहसा लापता हो जाता है और उस प्रान्त में जुझौतिया ब्राह्मणों का बाहुल्य तथा उस भू-भाग का नाम जुझौति पाया जाता है। कानपुर का जुझौता गांव चन्द्रब्रह्म का जन्म-स्थान होना कहा जाता है। इधर जुझौता नाम जुझौति देश

तथा जुझौतिया नामों से मिलता है। यह सब प्रान्त कन्नौज के मोखरि गहरवारों के अधीन था, तथा यहां गहरवार भी मोजूद थे।

इन सब बातों के विचार से ऐसा भास होता है कि जुझौता गांव का रहने वाला कोई हेमराज नामक जुझौतिया ब्राह्मण काशी कन्नौज के गहरवार इन्द्रजीत अर्थात् मोखरि इन्द्रायुध (७७०-८००) का पुरोहित था। उसकी विधवा कन्या हेमवती थी। कदाचित यह कालिंजर के निकट किसी मनिया ब्राह्मण कुल में ब्याही थी, जिसका संबंध कालिंजर के कलचुरि राजकुल से था। अतः उनसे पहले ही कदाचित जान पहचान थी। कदाचित मनिया कुल चन्द्रश्री का पुरोहित कुल था। ७८० ई० के लगभग यह पुरोहित कुल काशी में था। (२४६ या) ५५० ई० में कृष्ण चेदि ने कालिंजर पर कब्जा कर लिया था, और वह मोखरियों के समय में कदाचित कन्नौज का मातहत हो गया था। एरन का ब्राह्मण तथा यहां के गहरवार, गोंड़, परिहार आदि भी उसके मातहत थे। ७७५ ई० के लगभग इस देश के चेदि, चंदेरी, त्रिपुरि, कालिंजर आदि का अधिकारी चंद्रवंशी चेदिराज या कलचुरि चंद्रश्री था। इसका नाम स्थानीय कथा में है। यह भीं ७७५ ई० के लगभग काशी को गया था। इस देश में उसके पड़ोस के एरन प्रान्त का शासक जुझौता का जुझौतिया कुल था। इसी पड़ोस के नाते से काशी में चन्द्रश्री कदाचित हेमराज के साथ या पड़ोस में ठहरा था। इसी समय कदाचित स्वाश्रित मनियां कुल की वधू होने से चन्द्रश्री की दृष्टि हेमवती पर पड़ गई थी। अन्त में किसी भी प्रकार से उनका संयोग हो गया था। चन्द्रश्री के चले आने पर हेमराज को अपनी पुत्री का गर्भिणी होना मालूम पड़ा था। अतः हेमराज ने हेमवती को अन्यत्र न टालकर सीधे चन्द्रश्री के राज्य तथा उसके पति कुल के वास-स्थान के मार्ग पर पहुँचा दिया था। कालिंजर के निकट चांदीपीठा में पहुँचने पर कदाचित चन्द्रश्री ने उसका समाचार पाया था और अपने पूर्व वचनों के लिहाज से उसको आश्रय मिलने की योजना कर दी थी। मनियां कुल ने भी कदाचित चन्द्रश्री के दबाव से उसका संरक्षण करना स्वीकार किया था। चन्द्र ब्रह्म का जन्म चांदीपाढा में होने के उपरान्त अथवा उससे पहले ही हेमवती मनियांगढ़ (राजगढ़) को भेज दी गई थी। कदाचित चन्द्रश्री ने यह किला खजुराहा सहित आसपास का भू-भाग हेमवती अथवा चन्द्रब्रह्म को निर्वाहार्थ माफी या जागीर में दे दिया था। एक मनियागढ़ (राजगढ़) में और दूसरे महोबा में चन्देलों के पूज्य मनियादेव या मनियां देवी हैं। ये मनियां देव या मनियां देवी हेमवती के पति मनियाकुल के पुरुष या स्त्री ही थे। कदाचित मनियां देव हेमवती का ससुर,—जिसका नाम

'संमत' लिखा मिलता है। हो सकता है कि इसने चन्देल वंश की जनयित्री हेमवती का संरक्षण आदि किया था, इसी से वह चंदेलों द्वारा पूज्य हुआ था। मुं० ईश्वरी प्रसाद परमाल द्वारा मारा गया मनियांगढ़ के राजा के कामदार मनियां ब्राह्मण का प्रेत होकर मनियां देव नाम से था या जाना कहते हैं।[1] मनियां देवी मनियां कुल की वधू स्वयं हेमवती थी। वह चंदेल कुल की जनयित्री होने से उनके द्वारा पूज्य थी ही। इन्हीं दो में से किसी एक का मंदिर मनियांगढ़ पर है और दूसरे का स्थान महोबा में है। ये चन्देलों के मुख्य मूल स्थानों के मूल कुलदेव या देवी हैं। पिता का भेद गुप्त रहने से माता हेमवती मनियां देवी अथवा मनियां देव ही मूल पुरुष अथवा कुलदेव वा देवी के भाव से माने गये थे। मनियांगढ़ किला चन्देलों से बहुत पहले का जान पड़ता है। पहले उसका कुछ और नाम रहा होगा। पीछे हेमवती मनियां देवी से उसका नाम मनियांगढ़ पड़ा था। चंद ने मनियांगढ़ में गोंड़ राजा का होना लिखा है संभव है पहले वहां गोंड़ राजा हों। पीछे कलचुरियों ने उससे किला छीन लिया हो और समय पर हेमवती को दिया हो। चन्देलों का गोंड़ों से प्रादुर्भाव सम्बंधी सिलसिला होना ठीक नहीं जान पड़ता है। दुर्गावती के व्याह की पूर्ण वार्ता से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय भी गोंड़ चंदेलों से छोटे माने जाते थे और दलपति शाह को चढ़ाई कर जबर्दस्ती दुर्गावती का हरण करना पड़ा था। आज भी मनियां ब्राह्मण बुन्देलखण्ड के पूर्वी पहाड़ी भाग में पाये जाते हैं।

स्थानीय कथाओं में लिखा है कि चन्द्र ब्रह्म ने वयस्क होकर पहले चन्द्रश्री से कालिंजर छीना था। फिर इन्द्रजीत गहरवार को काशी की गद्दी से उतार कर हेमराज को काशी तथा गया का राज्य दिया था और इन्द्रजीत को कांतित का राज्य दिया था। चन्द्रश्री वही है जो चन्द्रब्रह्म का गुप्त पिता अनुमानित किया गया है। इन्द्रजीत गहरवार कन्नौज काशी का इन्द्रायुध मौखरि था। धर्मपाल (बंगाल) ने इन्द्रायुध को गद्दी से ८०० ई० में उतारा था। कदाचित चन्द्रब्रह्म ने इस समय धर्मपाल का साथ दिया था। इसी से यह कथा है। कांतित इन्द्रायुध को दी गई थी। यह स्थान सदा से गहरवारों का कहा जाता है। इससे भी मौखरि और गहरवार एक जान पड़ते हैं। चन्द्रश्री ही चन्द्रब्रह्म का गुप्त पिता था। वह चन्द्रवंशी था। इसी से कथा में वह चन्द्र या चन्द्रमा तथा चन्देल वंश को चन्द्रवंश लिखा गया है। चन्द्रब्रह्म के जन्म संबंधी ये सब घटनायें सन् ७७० और ८२५ ई० के बीच की हैं। ठीक इसी समय कन्नौज पर ८१० ई० में परिहारों का कब्जा हो गया था। उनके आश्रय से ४५५ ई० में आये हुए हूणों के वंशज, तथा ७५० ई० में वत्सराज प्रतिहार के साथ से छूटे हुए गुर्जर प्रतिहार अथवा परिहार अब अपने कुल का साम्राज्याधिकार हो जाने से विशेष प्रबल हो गये थे। ये लोग विशेषकर पश्चिमी तथा उत्तरी बुन्देलखण्ड में थे। चन्देल कुल के पहले राजाओं के साथ उनके संघर्ष वृत्तान्त नहीं मिलते हैं, जिससे जान पड़ता है कि चन्देलों के काबू से बाहर थे। अतः पहले चन्देलों ने उनकी कुछ बाहरी भूमि ही दबा पाई थी। उन्होंने कलचुरियों और गौड़ों पर विशेष हाथ फेरे थे। कदाचित चन्द्रब्रह्म द्वार चन्द्रश्री से कालिंजर छीने जाने की कथा सही है। परस्पर व्यवहार से मौका पाकर उसने छल से वह दबा लिया हो, पीछे वह फिर से निकल गया हो। तब यशोवर्मन ने उसे जीता था। चन्द्रब्रह्म द्वारा चन्द्रश्री और इन्द्रजीत के राज्य छीने जाने तथा कलंक मिटाने को हेमवती तथा चन्द्रब्रह्म द्वारा मांडव यज्ञ की कथायें अपना निराला ही नैतिक तथा धार्मिक आधार रखतीं हैं। कदाचित हेमवती इन्द्रजीत के किसी अज्ञात और चन्द्रश्री के अनुचित व्यवहार के कारण दोनों से रुष्ट थी। उधर लज्जित भी थी। संभव है मनियां अथवा जुझौतिया कुलों ने उसे भड़काया भी हो। अतः उसने चन्द्रब्रह्म द्वारा इन्द्रजीत और चन्द्रश्री दोनों को हानि पहुँचाई थी। फिर सभी बातों के प्रायश्चित स्वरूप मांडव यज्ञ किया था।

उपरोक्त विधि से विचारपूर्वक बैठालने से चन्द्रब्रह्म के संबंध की स्थानीय कथायें इतिहास से प्रायः पूरी-पूरी मिल जाती हैं। चन्द्रब्रह्म ही चन्देलों का मूल पुरुष था। उसका गुप्त पिता इन्द्रायुध मौखरि होने का संदेह अवश्य होता है, परन्तु यथार्थ में उसका गुप्त पिता कालिंजर का चन्द्र हैहय कलचुरि वंशी चन्द्रश्री होना अधिक मान्य प्रतीत होता है। उसी से चन्द्रब्रह्म चंद्र वंशी था। यह ७७४ ई० या ७८० ई० में जन्मा था। उसकी मृत्यु ८२५ ई० में हुई थी। इसका पुत्र बाल ब्रह्म उपनाम नन्नुक था। स्थानीय कथाओं में बाल ब्रह्म[1] तथा शिलालेखों में नन्नुक लिखा है। अर्थ से ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के थे।

---

1. लेखक का आशय है कि मुंशी ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार मनियांगढ़ के राजा का कामदार मनियां ब्राह्मण परमाल (संभवतः परमर्दिदेव चंदेल-नरेश) द्वारा मारे जाने पर प्रेत हो गया था और मनियां देव के नाम से विख्यात हो गया था। परमाल का नाम आने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह महोबा के मनियांदेव से संबंधित जनश्रुति के आधार पर लिखा गया है, मनियांगढ़ से इसका कोई संबंध नहीं है

1. बालब्रह्म का नाम बारीगढ़ में जो उसका बसाया कहा जाता है, जनश्रुति के रूप में विख्यात है। जगतराज की दिग्विजय में बालब्रह्म का नाम उल्लिखित है।

शिलालेखादि में अपवाद के भय से उत्पत्ति के सम्बन्ध की कथा नहीं दी गई है, वरन् चन्द्रब्रह्म का नाम ही उड़ा दिया गया है। जनता ने मूल पुरुष चन्द्रब्रह्म की कथा लिखकर हेमवती और चन्द्रश्री का सम्बन्ध स्पष्ट दिखला दिया है। चन्द्रश्री के स्थान में चन्द्र या चन्द्रमा नाम रखकर तथा कुछ अलौकिक ढंग दिखलाकर सभ्य दृष्टि के लिये उस पर केवल बहुत ही बारीक-सा पर्दा छोड़ दिया है। जनता उसे बिलकुल साफ कर देती, पर पहले कलचुरि फिर स्वयं चन्देलों के शासन का दबाव ४०० वर्ष तक रहा। इस बीच में कुछ भूल गये और कुछ स्पष्ट करने की परवाह चली गई।

ब्राह्मण क्षत्रियों के प्रणय अथवा ब्याह-सम्बंध अति प्राचीन वैदिक तथा पौराणिक काल से होते रहे हैं। स्वयं चन्द्र वंश ही मूल में चन्द्र देव और बृहस्पति की श्री तारा के संयोग से उत्पन्न बुध से हुआ था। उसी चन्द्रकुल में चन्देल वंश की उत्पत्ति के संबंध में फिर ठीक वैसा ही प्रसंग आया। प्राचीन धार्मिक तथा सामाजिक प्रथानुसार चन्द्र वंश या चन्देल वंश कोई भी दूषित नहीं। वह शुद्धचंद्र कुल है।

बुन्देल खण्ड के एक भाग का चेदि, चन्देरी या चंदेली नाम भी 'चंदेल' वंश की ओर कुछ प्रकाश डालता है। एक स्थानीय कथा में चन्देरी से चंदेलों का होना लिखा है। चेदि वंश का वहां से संबंध था तथा उसी से पड़ोस में एरन में ब्राह्मण शासक थे। वे पीछे गायब हो गये और उनके बदले में चेदि और फिर चन्देल वंशी दिखलाई दिये। यह बात भी चन्द्रवंशी पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से चन्देलों के प्रादुर्भाव की कथा को कुछ समर्थन पहुँचाती है। पूर्वी चन्देल खण्ड के मुकाबले में चंदेरी के पड़ोस में चंदेलों के चिह्न कुछ अधिक ही पाये जाते हैं। वे चिह्न खजुराहो से कुछ पहले के से जान पड़ते हैं, जिससे चंदेलों का पहले वहां होना पीछे खजुराहो तरफ आने का कुछ अनुमान होता है। जेजकभुक्ति नाम सहित पृथ्वीराज की विजय का लेख उसी भाग में (११८२ ई० का) मिला है। वहीं जुझौतिया ब्राह्मण भी कुछ अधिक हैं। ह्वेनसांग द्वारा वर्णित चिहचिटो देश यही चेदि अथवा चेटिस देश जान पड़ता है। उत्तर दक्षिण का एक मार्ग उसी ओर से रहा है। खजुराहो, महोबा, कालिंजर के आसपास से कोई मार्ग रहने का पता नहीं लगता है। अतः ह्वेनसांग द्वारा वर्णित चिहचिटो पश्चिमी बुन्देलखण्ड हैं, पूर्वी नहीं। वह उधर नहीं आया था। चेदि तथा चन्देल वंश के संबंध के "अत्रि, त्रिपुरि, त्रिकलिंग, दत्तात्रेय, चन्द्रात्रेय, चंदेरी, चेदि, चंद्र, चंदेल, चन्द्रब्रह्म, चन्द्रवंश, चन्द्रराज (हेमराज) चन्द्रश्री, चांदीपाठा, पठा" आदि शब्दों का साम्य भी ध्यान देने योग्य है।

—लेखक के सुपुत्र उदारमना कुंवर पृथ्वीसिंह बुंदेला के सौजन्य से

लौट आयी है लक्ष्मी

राधावल्लभ

—और सब कुशल है?—यह सवाल ससुर जी उनसे दूसरी बार पूछ रहे थे।

—जी हां।— उन्होंने कहा, और बैठने की मुद्रा बदली।

—अरे आराम के बैठिये न आराम से।—ससुर जी ने संभ्रम के साथ दूसरी बार कहा था।

नहीं, ठीक है।—वे कुछ बेचैनी महसूस करने लगे थे। ससुर जी भी उनकी उपस्थिति में घबरा से गये थे। ऐसा हर बार होता था—जब भी वे यहां आते। उनकी उपस्थिति में ये लोग आतंकित से हो जाते। वे भी अपने आप को यहां कटा हुआ महसूस करते।

वे सोचने लगे कुछ बात करें ताकि संभ्रम का यह जाल कुछ कटे। पर क्या बात करें, कुछ समझ में नहीं आया। उन्हें यहां का हालचाल कुछ मालूम नहीं था। ऐसा कोई भी सूत्र स्मरण नहीं आया, जिसके सहारे संवाद हो सकता। मंदिर के बारे में इनके किसी रिश्तेदार से मुकदमा चल रहा था—ऐसा विभा ने बताया था। पर उसकी कोई तफसील तो मालूम नहीं, नहीं तो उसी के बारे में पूछते।

ये लोग उनको मंदिर दिखाने ले भी गये थे बहुत पहले। मंदिर आधुनिक था। प्राचीन होता, तो वे वास्तुशास्त्र या स्थापत्य की दृष्टि से कुछ रुचि भी लेते। छोटी सी कोठरी में मंदिर था। अंदर भी वे अनिच्छा से गये थे। मंदिर से इन्हें अप्रसन्न हुआ समझ कर ससुर जी ने फिर कभी इनके आगे मंदिर की चर्चा नहीं की थी।

—आपकी तस्वीर देखी थी अखबारों में। वो...कोई व्याख्यान आपने दिया था भोपाल में...उसकी खबर के साथ।—ससुर जी ने तब तक उनसे बात करने का एक सूत्र खोज लिया था।

—हां...हां—उन्होंने याद करते हुए अनिश्चय के साथ कहा। गोपाल बे कब गये थे? वह तो करीब छह सात महीने पहले की बात हो गयी...प्राच्य विद्या मंदिर वाली कान्फ्रेंस में। अखबार में उनका कुछ आया था?—याद तो नहीं पड़ता। सक्सेना...उनका सेक्रेटरी—फाइलें रखता है। निकला होगा, तो उसके पास फाइल में होगा।

ससुर जी को शायद लगा कि उनको व्याख्यान वाली बात भी इन्हें पसन्द नहीं आयी। वे चुप हो कर कुछ सोचने लगे।

तभी मणिका—इनकी बड़ी लड़की—कमरे में क्या आयी कि भूचाल सा आ गया। वह पीछे से आ कर बप्पी जी की आंखें बंद कर उनकी पीठ पर झूल सी गयी।—अरे, कौन है भइ?—बप्पी जी ने पहचान कर भी खेल के इरादे से पूछा।

—अरे मणि, ठीक से बैठो, यह क्या?—उन्होंने हस्तक्षेप किया।

—आओ...आओ.. बैठो—ससुर जी ने उनकी उपस्थिति के कारण संयत हो कर कहा, वरना हर बार की तरह नातिन के साथ खेलने की उनकी इच्छा थी।

—ओह बप्पी जी, आप हमे पुराना किला दिखाने कब ले चलेंगे?—मणिका पापा की झिड़की और बप्पी के संभ्रम की परवाह न कर उसी तरह झूलती हुई बप्पी जी के बगल में बैठ कर कहने लगी।

—शाम को चलेंगे, शाम को। अभी तो दोपहर है।

हर बार आप टाल देते हैं। पिछली दीवाली पर आये थे, तब भी नहीं ले गये...।

—किला तुम देख चुकी हो एक बार—उन्होंने फिर हस्तक्षेप किया।

—कहां, बहुत पहले देखा था। पिछली बार आये थे, तब से कहां गये?

—उस बार दो दिन रुक कर ही तो चली गयी थी बिटिया—ससुर जी ने कहा, और हंस कर इन्हें देखा।

उन्होंने अपने ऊपर कटाक्ष का अनुभव किया। पिछली बार काफी कहा था इन लोगों ने रुकने के लिये। विभा की भी बहुत इच्छा थी, पर समय कहां था उनके पास? विभा को यहीं छोड़ जाने की बात भी की थी, पर मणि की परीक्षा थी नवंबर में।

—वो तो मेरा हाफ ईयर्ली इक्जाम था न उस बार।—मणि कह रही थी।

—इस बार तो रुकेगी?—पूछ कर ससुर जी ने फिर उनकी ओर देखा, जैसे मणिका से न पूछ कर उनसे पूछ रहे हों।

ऐसा पहले भी कई बार हुआ है। दोनों को एक दूसरे के सामने संकोच जकड़ लेता, तो मणिका संवाद का माध्यम बन जाती—जब वह तीन साल की भी थी तभी से।

पर अब मणिका भी इतनी बड़ी दिखने लगी थी कि वह माध्यम भर नहीं हो सकती थी।

—बप्पी जी, मन्दिर कब चलेंगे?—वह पूछ रही थी।

—शाम को, मम्मी और मां को साथ ले चलना।

कल दीवाली है न— खूब पटाके चलायेंगे...

हां, हां, शाम को—

मणिका जोर से हंसने लगी।—अरे, क्यों हंसती हो इस तरह?—उन्होंने डपटते हुए पूछा। बप्पी जी भी अचकचा गये।

—क्या-आप हर बात में कह देते हैं-शाम को-शाम को-—।

बप्पी जी भी हंसने लगे।—शादी कर देंगे अब तेरी।—उन्होंने कहा।

—मेरी??—किससे???

शब्द के अंत में जब वह 'ई' या 'ए' को प्रश्नवाचक बनाने के लिये लंबा खींचती' तो उतार-चढ़ाव के साथ कई ध्वनि तरंगें पैदा हो जातीं। वे तरंगें उनके भीतर अजीब सा अहसास पैदा करतीं—बचपन में गांव के जमींदार के बगीचे से कच्चे आम चुराने का अहसास, उस समय की खटमिट्टी खुशबू वाली हवाओं का अहसास-पढ़ाई के लिये गांव को छोड़ते समय का अहसास— पर वे अहसास इतनी जल्दी पैदा होते ही खो जाते कि वे उन्हें न ठीक से समझ पाते, न किसी से कह पाते...

बप्पी जी ने न जाने क्या कहा कि मणिका खिलखिला कर हंस पड़ी। उन ध्वनितरंगों की गूंज उनके भीतर और भी तेजी से बनी और बिखर गयी।

—अरे, दादी से मिली या नहीं?—बप्पी जी एकदम बात बदल कर पूछ रहे थे।

—ओ, दादी मां?—इत्ती देर से उन्हीं के पास तो बैठे थे। सब लोग घेर कर बैठ गये उनको—मनीश, अल्पी, और क्या नाम-वो राकेश और विनीता भी। कहानी नहीं सुना रहीं थीं दादी मां। कहतीं हैं दिन में कहानी सुनाने से मामा रास्ता भूल जाते हैं। देखिये आप, बहाने कितनी बनाने लगीं हैं नानी जब कि पहले सुनातीं थीं दिन में भी कहानी। अच्छा, आप उन्हें चश्मा क्यों नहीं लगवाते, अब तो उन्हें कुछ दिखता ही नहीं है—

मणि कितनी आसानी से इस घर के लोगों से संवाद कर लेती थी, जबकि उन्हें एक-एक शब्द के लिये अटकना पड़ता। मणि जब छोटी थी, तब जब भी वह यहां आती, अपने खिलौनों का डिब्बा उठा कर नानी के पास चली जाती, चाहे उन्हें दिखाने। घंटों वह उनके साथ खेलती रहती।

उन्होंने अपनी नानी मां को देखा था कभी? याद नहीं पड़ता। घर से पच्चीस बरसों से संबंध लगभग टूट गया था। उसके पहले जितने संबंध थे, उनकी यादें इतनी भयावह थीं कि उन्होंने उन्हें मन की तहों में दफना सा दिया था। विद्यार्थी जीवन उनका बहुत संघर्ष में बीता था, फांके, ट्यूशन और स्कालरशिप के सहारे किसी तरह आगे बढ़ते रहे, फिर इतना आगे निकल गये कि पीछे देखना असंभव था कि कितना कुछ छोड़ आये हैं। माता-पिता अभी भी रहते हैं, पुश्तैनी गांव में। साल में एक-आद बार कभी वे बेटे को देखने आते भी हैं, तो तीन-चार दिन में आतंकित से हो कर लौट जातें हैं—

—अच्छा, अच्छा। चलो अब सोने दो पापा जी को। थोड़ा आराम कर लेवें।—बप्पी से लगभग उठते हुए कह रहे थे।

—पापा जी दिन में सोते ही कहां हैं...पापा जी आप चलेगें मन्दिर?

—हां, आं—उन्होंने अनिश्चय के साथ कहा।

—लेटिये आप।—ससुर जी उठते हुए कहने लगे।

तभी मणि को दरवाजे के बाहर कोई दिखा, और वह दौड़ती हुई बाहर निकल गयी।

उन लोगों के जाने के बाद वे उनींदे लेटे रहे। आज सुबह आये थे। चौबीस घंटे की यात्रा की थकान। फिर काम की चिंता। काम का हर्ज तो होता ही है। कल दीवाली है। परसों चल देगें यहां से। ...विमा का आग्रह न होता, तो न आते। हर बार विमा जिद कर के उन्हें ले आती है यहां दीवाली पर। आना नहीं चाहते हैं, पर इस मामले में विमा के आगे झुक जाते हैं। वह अकेली भी नहीं आना चाहती यहां। वे एक निरर्थक उपाधि की तरह विमा के साथ यहां चले आते हैं। यहां विमा का साम्राज्य रहता है, कई मामियों के बीच अकेली ननद होने से। उस साम्राज्य में वे अपने को गौण और अप्रासंगिक अनुभव करते हैं—जिस तरह वहां—उनके साम्राज्य में विमा। अपने इस तरह इस्तेमाल किये जाने पर वे बस कुढ़ते रह जाते हैं।

—उठो, चाय पी लो।

विमा की आवाज पर उन्होंने अचकचा कर आंखें खोल दीं।

—चलोगे मन्दिर?—उन्होंने चाय का प्याला हाथ में लिया, तो विमा उनके पास पलंग की पाटी पर बैठ कर पूछने लगी।

—मन्दिर?...मन्दिर जा कर क्या करूंगा?—उन्होंने कहा—मैं दर्शन-वर्शन करता नहीं, सिद्धान्ततः मैं मन्दिर की संस्था के...

—हां, रहने दो अपना भाषण।—विमा ने चिढ़ कर कहा—आ गये सिद्धान्त वाले। सेठ गोवर्धनदास के मन्दिर पर कैसे चले गये थे? वहां तो खूब भक्ति भाव से दर्शन किये, नवरात्र में जाकर नवधा भक्ति पर प्रवचन भी झाड़ आये वहां।

—वो...गोवर्धन जी के मन्दिर में? देखो भइ, सेठ गोवर्धन ने पांच लाख रुपया डोनेट किया है हमारे इंस्टिट्यूट को ..अब इंस्टिट्यूट चलाना है तो... इंस्टिट्यूट बहुत बड़ा काम कर रहा है, तुम नहीं समझोगी ..

आज सब लोग जायेगें... धनतेरस है—एक बार यहां के मन्दिर जाने में कोई पैर थोड़े टूट जायेगें जैसे वहां सिद्धान्त एक तरफ रख दिया—

—गया तो था बाबा सिद्धान्त एक तरफ रख कर तुम्हारे उस पैतृक मन्दिर में भी—

—कहते हुए उनके चेहरे पर एक खास तरह की मुस्कान तैर गयी, जो विमा को खिझाने के समय आया करती है—वह जो मन्दिर है न—उन्होंने कहा

—कोई खास नहीं है, बड़ा टूटपुंजिया सा तो मन्दिर है—

—खास तो सिर्फ तुम्हीं हो न।—विमा ने जलभुन कर कहा—मन्दिर भी कभी बुरा होता है। मन्दिर तो भावना से होता है। अपनी भावना शुद्ध हो, तो...

—विमा बेटी। कहां है?.. अच्छा यहां है?—कहते हुए बप्पी जी अंदर आ गये।—आपने चाय ली?—उन्होंने इन से पूछा। फिर अपने हाथ के पैकेट विमा को दिखाते हुए कहने लगे ये देखना कैसे हैं। अभी खरीद कर लाया हूं—

विमा पैकेट खोल कर देखने लगी। स्टील के चमचमाते ग्लास। कटोरियां। वह बहुत उल्लसित हो कर देख रही थी। ऐसा उल्लास उनके चेहरे पर तो पांच लाख का डोनेशन पा कर भी नहीं आता होगा।—ठीक न हों, तो अभी वापस कर दें।—बप्पी जी कह रहे थे।—नहीं बहुत अच्छे हैं।—विमा ने कहा, आवाज में किसी तरह की बनावटी तारीफ करने का भाव नहीं।

—यह डिजाइन बहुत अच्छी है।—वह मुग्ध हो कर बर्तन देख रही थी।

—भइ, आप लोग बड़े शहर में रहते हैं, तो जानते हैं नयी डिजाइनें।

यहां तो पुरानी डिजाइनें अब आ रही हैं।—बप्पी जी ने कहा।—नहीं, बहुत अच्छी हैं सबकी डिजाइनें।—विमा ने उन्हें विश्वास दिलाया।

बप्पी जी को कोई चीज खरीदने के मामले में विमा से राय मशविरा करने की आदत वैसी ही बनी हुई थी। सब भाइयों में बड़ी होने से उसका घर में अपना रुतबा था। इस घर में बरसों से पुरानी बातें वैसी ही चली आ रहीं थीं। भण्डार घर में ढेरों बर्तन पीढ़ियों पुराने और नये भी भरे पड़े होगें, फिर भी हर साल धन तेरस पर नये बर्तन खरीदे जाते।—यह घर समय के प्रवाह में कैसे बना हुआ है बिल्कुल वैसा ही!—वे अचरज करते।

बप्पी जी बर्तन का पैकेट ले कर अंदर चले गये। शाम होने लगी थी। विमा भी अन्दर जा कर मन्दिर के लिये कपड़े बदलने लगी। अन्दर से मणिका, मनोष, अल्पी, राकेश वगैरह की बातचीत का हल्लागुल्ला लगातार कानों से टकराता। बीच बीच में बप्पी जी या उनके बड़े साले के आदेश का स्वर।

तभी चाय की ट्रे और नास्ते की प्लेट लिये कोई महिला उनके आगे खड़ी हो गयी। वे ठीक से पहचान नहीं पाये। शायद बड़ी सलहज थी।—अरे, अभी तो ली थी चाय!—वे बहुत संकुचित हो कर बोले। उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया, ट्रे बगल की टेबुल पर रख कर चली गयीं।

बप्पी जी, बच्चे, विमा और कुछ लोग सामने की गैलरी से मन्दिर जाने के लिये निकल रहे थे।—ये आयेंगे क्या... डाक्टर साहब?—बप्पी जी शायद विमा से इसी कमरे की ओर संकेत कर के पूछ रहे थे। जवाब में विमा ने धीरे से पता नहीं क्या कहा। फिर उनकी आवाजें दूर होतीं गयीं। बप्पी जी दुबारा आग्रह करते, तो शायद वे चले चलते मन्दिर तक .. पर जा कर क्या करते? वहां भी अकेले बैठ कर क्या करेंगे?

तीन साले हैं, पर सब अपने काम-धधें में रहते हैं, फुरसत किसे है? और जब फुरसत निकाल कर वे उनके पास बैठते भी तो वे उनसे संवाद भी कहां कर पाते थे—वही एक संभ्रम का कोहरा बीच में छा जाता...

रात गहराती गयी। भोजन के बाद उनका बिस्तर लगा दिया गया। छोटी सलहज आ कर मसहरी बांध गयी। इसका नाम शायद रमा था। इसकी शादी के समय उन्होंने एक बार इससे कुछ मजाक की बात कही थी—याद नहीं आ रही क्या बात थी—और यह बहुत शर्मायी थी। इतने सालों में वे इन लोगों से बराबर दूर होते चले गये हैं—शायद अपने ही स्वभाव की वजह से—पर इन लोगों की भी अपनी अपनी दुनिया है।

सारा घर सोने की तैयारी कर रहा था। विमा की दादी मणिका, अल्पी और सब बच्चों को कोई कहानी सुना रही थीं। कहानी के कुछ शब्द बीच बीच में उनकी पकड़ में आ पाते। ससुर जी के भजन गाने की आवाज आ रही थी, बहुत धीमी, पर लयबद्ध।

क्रमशः सन्नाटा गाढ़ा होता गया। उन्होंने बिस्तर पर लेट कर आंखें मूंद ली।

आधी रात बीत गयी थी, पर उन्हें नींद नहीं आ रही थी। करवट पर करवट बदल रहे थे। मन एक अजीब उलझाव में भटक गया था। अपने घर होते, तो इस समय तक काम से घिरे होते। रुक कर, ठहर कर सोचने का मौका ही कहां मिल पाता था वहां? किताबें देने के लिये प्रकाशकों की चिट्ठियां आती रहतीं, कान्फ्रेंसेज के निमंत्रण, दिन भर इंस्टिट्यूट का काम—

अचानक वे चौंके। किस की आवाज थी? पायल जैसी बजी थी। कोई उनके पलंग के बाजू से होता हुआ निकल गया। विमा हो सकती है—नहीं, वह यहां क्यों आने लगी—दिन भर की थकान के बाद वह बच्चों के बीच बहुत गहरी नींद में सोयी होगी। एक तो उसे उनके जैसा अनिद्रा का रोग नहीं, फिर यहां आ कर तो वह बड़ी गाढ़ी नींद लेती है, गृहस्थी की कोई जिम्मेदारी नहीं, चिंता नहीं...

वे हड़बड़ा कर उठ बैठे। कोई छाया दरवाजे से बाहर जा रही थी।

—कौन है? कौन है उधर??—उन्होंने घबराहट के साथ पुकारा।

—मैं लक्ष्मी हूं।—उस छाया ने रुक कर जवाब दिया।

—लक्ष्मी?—कौन लक्ष्मी?

—मैं इस घर की लक्ष्मी हूं।—वह छाया वापस लौट कर उनके सामने आ खड़ी हुई।

—लक्ष्मी जी, आप?—उन्होंने अचरज से आंखें मलते हुए पूछा—आप इस समय यहां कैसे आ गयीं?—

—मैं तो यहीं रहती थी अब तक—लक्ष्मी जी बोलीं—अब जा रही हूं। इस घर में अब नहीं रह पाऊंगी।

—क्यों भला?

—क्यों कि आप यहां आ गये हैं। जहां आप हैं, वहां मैं नहीं रह सकती—

—गलत, एकदम गलत। आप खूब जानतीं हैं कि मेरे पास लक्ष्मी का अभाव कभी नहीं रहा। मेरा मतलब है—जब से मैं अपने पैरों पर खड़ा हुआ तब

से। मेरे पास अपना बंगला है, कार है, सुख सुविधा की हर वस्तु मेरे पास है। इंस्टिट्यूट का डायरेक्टर हो जाने के बाद से मेरा वेतन—

—आप गलत समझ रहे हैं। मैं रुपये पैसे वाली लक्ष्मी नहीं। सम्पत्ति का रहना ही लक्ष्मी का रहना नहीं हो जाता। मैं मन की सम्पत्ति—

रहने दीजिये। आप मुझे क्या बतायेंगी कि लक्ष्मी क्या है।—उन्होंने लक्ष्मी जी को बात बीच में ही काटते हुए कहना शुरू किया— लक्ष्मी के स्वरूप पर मेरा अनुसंधानपूर्ण लेख एक विदेशी पत्रिका में छपा है। खूब प्रशंसा हुई है उसकी। लक्ष्मी का आरिजिन ऋग्वेद से ही ट्रेस किया है मैंने। असल में हमें अपने बहुत से कांसेप्ट्स क्लियर ही नहीं है —खास तौर से प्राचीन देवता शास्त्र पर तो अभी बहुत विचार करने की आवश्यकता है। अब जैसे यह लक्ष्मी का कंसेप्ट लीजिये . , तो यह जो लक्ष्मी का कंसेप्ट है हमारी कल्चर में—मेरा मतलब है लक्ष्मी जी कि लक्ष्मी की यह जो अवधारणा हमारी संस्कृति में है—

लक्ष्मी जी उन्हें बीच में ही रोक कर सौम्य भाव से हंसीं—आप अपनी अवधारणाओं की मीमांसा करते रहिये, मैं जा रही हूं—उन्होंने कहा, और दरवाजे से बाहर निकल कर अन्तर्धान हो गयीं। वे चकित रह गये। लक्ष्मी जी को आखिर ऐसी जल्दी क्या थी ? कम से कम उनकी एनालिसिस तो ध्यान से सुन लेतीं...

तभी एक दूसरी छाया वहां प्रकट हुई।—आप कौन हैं ?–उन्होंने पूछा।

—मैं धर्म हूं। जहां लक्ष्मी रहती हैं, वहां मैं रहता हूं। लक्ष्मी इस घर से बाहर जा चुकी हैं, इसलिये मैं भी जा रहा हूं।

उन्होंने तत्काल निर्णय लिया कि लक्ष्मी गयी, तो गयी, धर्म को वे नहीं जाने देंगे। उन्होंने अपने गुरु-गंम्भीर, प्रभावशाली स्वर में धर्म को संबोधित किया—धर्म की थियरी पर बड़े बड़े विद्वानों ने मुझे अथारिटी माना है। भारतीय धर्म के इतिहास पर मेरा आठ सौ पृष्ठों का वृहत्काय ग्रंथ प्रकाशित है। वर्ल्ड इंस्टिट्यूट फार स्टडीज इन कम्पेरेटिव्ह रिलीजन ने उस ग्रंथ को पुरस्कृत किया है। समझ रहे हैं न ? मैं आपको यह बताना चाहता था कि लक्ष्मी और धर्म का हमारी सांस्कृतिक अन्तर्धारणाओं में क्या अन्तः संबंध हो सकता है, समझ रहे हैं धर्म जी— एं, कहां गये ?–

वे अपना विवेचन पूरा कर पाते, इसके पहले ही धर्म उस दरवाजे से बाहर निकल कर अन्तर्धान हो चुका था, जिस दरवाजे से लक्ष्मी गयीं थीं। अरे, चले ही गये ?— वे बड़बड़ाने लगे—कोई बात नहीं, इससे मेरे निष्कर्षों में अंतर नहीं पड़ता, मैं अकादमिक ईमानदारी में विश्वास करता हूं...

तभी दूसरी छाया वहां प्रकट हुई।—अब तुम कौन हो भइ ? तुम कीर्ति हो, है न ? पुरानी कहानी में भी राजा के यहां से पहले लक्ष्मी जाती है, फिर धर्म, फिर कीर्ति—

— मैं सरस्वती हूं।—छाया ने कहा।

—सरस्वती जी आप ?—उन्होंने प्रसन्न हो कर कहा--आप यही कहने आयीं है न कि लक्ष्मी और धर्म गये तो गये, मैं सदैव तुम्हारे साथ रहूंगी--

--नहीं, मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकती। जहां लक्ष्मी और धर्म हैं—

—क्या घिसीपिटी बात कर रहीं हैं आप। समय के साथ आपको भी कुछ तो बदलना चाहिये। अस्तु, आप जो कुछ भी कहें, दुनिया तो यही मानती है कि मेरी जिह्वा पर सरस्वती बसती है। बल्कि दिल्ली में मेरा अभिनन्दन हुआ, उसमें उन लोगों ने जो अभिनंदन-पत्र दिया, उसमें कुछ इस तरह का वाक्य था भी...

—वह सब तो छद्म है, वास्तविकता—

—क्या है वास्तविकता ? क्या मैं विद्वान् नहीं हूं ? अपने विद्यार्थी जीवन में अठारह अठारह घंटे पढ़ता था मैं। विश्वविद्यालय का पूरा पुस्तकालय मैंने चाट डाला था। विद्या व्यासंग में मैं अभी भी लगा नहीं हूं उसी संकल्प और निष्ठा के साथ--

—विद्या—

—विद्या ददाति विनयम्।—वही पुरानी घिसीपिटी बात। इस सबमें विश्वास नहीं करता मैं। ठीक है मेरा अहं है पर उसी की वजह से तो मैं इतना आगे बढ़ सका। यह न होता, तो जमाना मुझे कुचल कर रख देता। और फिर यह ईगो न होता, तो मैं आपकी इतनी आराधना, सेवा भी कहां कर पाता सरस्वती जी ?... ठीक है, आपको जाना हो, तो जाइये, पर याद रखिये, लक्ष्मी और धर्म के साथ मिल कर यदि आप मेरे खिलाफ कोई षड्यंत्र कर रहीं हो, तो उससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ने वाला है। बीस वर्ष की नौकरी में मेरे खिलाफ कितने ही षड्यंत्र रचे गये, मैंने उन सबको विफल कर दिया। मैं अपने ढंग से अध्ययन-अनुसंधान में लगा ही रहूंगा, हां, हां, जाइये, जाइये, कोई फर्क नहीं पड़ता।—

—अब तुम कौन हो भइ ?–फिर दूसरी छाया को आता देख उन्होंने पूछा।

—मैं यश हूं। जहां लक्ष्मी, धर्म और सरस्वती हैं—

—वहीं मैं भी रहता हूं।—उन्होंने चिढ़ कर नकल उतारते हुए वाक्य पूरा किया—लगता है लक्ष्मी और सरस्वती के साथ तुम्हारा भी दिमाग फिर गया है, वरना पुरानी कहानी तक में यश राजा को छोड़ कर नहीं जाता, तो लक्ष्मी वगैरह

झक मार कर लौट आतीं है वापस। देखो मह, अगर तुम सचमुच यश हो, तो यह समझ लो कि मैं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का विद्वान् हूं। मेरी कीर्ति दिग-दिगंत तक प्रसारित है। भारतीय दर्शन, धर्म, धर्म और संस्कृति पर मेरी गवेषणाएं विश्व के बड़े-बड़े पण्डितों के द्वारा सराही जाती हैं। मेरी स्थापनाएं मौलिक और महत्व की स्वीकारी गयीं हैं, और उद्धृत होतीं हैं। विदेशों से व्याख्यान देने के लिये मेरे पास निमंत्रण आ चुके हैं—

—पर आपकी इस ख्याति में कलंक भी तो लगा हुआ है—

– कैसा कलंक ?

—डायरेक्टरशिप हथियाने के लिये आपने जो हथकंडे —

—क्यों, क्या मैं डायरेक्टरशिप के लिये योग्य नहीं था ? मैंने इंस्टिट्यूट जितना अच्छा चलाया, उतनी अच्छी तरह और कोई चला पाता ? मैने इंस्टिट्यूट के लिये लाखों रुपया इकट्ठा किया, दिल्ली से ग्रांट ले कर आया, स्टेट गवर्नमेंट से ग्रांट बढ़वायी सो अलग। मैंने इंस्टिट्यूट के लिये विशाल भवन बनवाया। कई प्रोजेक्ट्स शुरू करवाये, अच्छे लोगों की नियुक्तियां करवायीं, लाखों पुस्तकें खरीदवायीं इंस्टिट्यूट की लाइब्रेरी के लिये। मेरे निर्देशन में इंस्टिट्यूट का इतना विस्तार हुआ...

—पर यह सब क्या आपने शुद्ध हृदय से किया ? जैन समाज में आ कर उनके जैसी बातें कहीं, और उनसे रुपया लिया, वैष्णवों के बीच भी यही किया, राजनीतिक पार्टियों से आपने--

—मुझे बनाओ मत। मैं सब धर्मों की मूलभूत एकता में विश्वास करता हूं। और किसी तरह की राजनीति से मेरा संबंध नहीं... ।

—क्या सचमुच ?—यश खिलखिला कर हंसा और दरवाजे से बाहर चला गया।

—रुको, रुको मह, तुम मुझे छोड़ कर इस तरह नहीं जा सकते ?– वे चिल्लाये, पर तब तक यश गायब हो चुका था।

उन्हें विश्वास नहीं था कि यश भी इस तरह उनको छोड़ कर चला जायेगा। अब तक वे समझ रहे थे कि लक्ष्मी, धर्म वगैरह उनके साथ मजाक कर रहे हैं, और कुछ देर में वे वापस लौट ही आयेंगे, पर अब लगने लगा कि उनके पास कुछ नहीं है, वे एकदम रीते हो गये हैं। फिर वे उन चारों के साथ जैसा जो कुछ भी संवाद हुआ था, उसकी मीमांसा करने लगे।

रात बड़ी बदहवासी में गुजरी। वे बार बार यही सोचने लगते कि यहां

आ कर बड़ी गलती की। यहां न आते, तो ऐसे डरावने खयाल ही पैदा न होते दिमाग में। वहां तो ऐसा कभी नहीं हुआ, वहां इतना समय ही कहां मिलता था कि यह सब फालतू की बातें दिमाग में आ सकें—

लक्ष्मी, धर्म आदि की चौकड़ी ने उनका जो अपमान किया था, उससे रह रह कर वे तिलमिला उठते। उनके साथ ही अनिद्रा की स्थिति में यह विचार भी उन्हें सालने लगता कि इस घर के लोगों को जब पता चलेगा कि उनकी वजह से लक्ष्मी वगैरह इस घर से चले गये, तो ये लोग न जाने क्या करेंगें। अभी तक जो कुछ आदर, स्नेह उनके प्रति दिखाते हैं, उसे तिलांजलि दे कर अर्धचन्द्रप्रदानपूर्वक निकाल बाहर करेंगें। ..पर मैं तो खुद ही चला जाऊंगा। सुबह उठते ही सूटकेश उठा कर चल दूंगा चुपचाप। विभा और बच्चे भले यहीं बने रहें...

या फिर वे सुबह विभा को एकांत में बुला कर कांफिडेंस में ले कर पूछें कि लक्ष्मी और धर्म आदि ने मुझे तो छोड़ा सो छोड़ा, मेरे कारण वे इस घर को भी छोड़ कर चले गये। ऐसी स्थिति में तुम मेरा साथ दोगी या यहीं रहोगी ?

इसी उधेड़बुन में पहाड़ सी रात कट गयी।

बड़ी मुश्किल में भिनसारे के वक्त थोड़ी सी झपकी लगी थी कि कई तरह की आवाजों से सहसा वह टूट गयी।

—देखिये मां जी ! सुबह से ही पटाखे और फुलझड़ियां ले कर भाग रहे हैं। मान नहीं रहे हैं ये लोग !—शायद उनकी बड़ी सलहज की आवाज थी।

वे जमुहाई लेते हुए बिस्तर से बाहर आ गये। माथा भन्ना रहा था, जिस पर बच्चों की चिल्ल पों से वह और ठनकने लगा। किलकारियां, खिलखिलाहट और चीखें। इन आवाजों में उनके बच्चों की आवाजें भी थीं— मनीष और अल्पी की। जरूर मणिका भी शामिल होगी उनमें। इतनी बड़ी हो गयी है, पर बच्चों की तरह हरकतें करती है वह भी अक्सर। वे दायित्व के भार से तन कर सजग हो उठे। मनीष को डांटना चाहिये, दूसरे का घर है, यह क्या शैतानी मचा रखी है ?

तभी हाथ में जलती हुई फूलझड़ी लिये अल्पी दौड़ती हुई उनके कमरे में घुस आयी।

—पापा, देखिये, देखिये तो, कितने फूल निकल रहे हैं—

—नहीं, इस वक्त नहीं अल्पी, रात को चलना—उन्होंने कठोर स्वर में कहा।

पर उनकी आवाज कई आवाजों में गड्डमगड्ड हो गयी। बच्चों के समूह

ने उन पर धावा बोल दिया था।—फूफाजी, देखिये मनीष ने हमारी टिकड़ी ले ली, ये हमारा साथ नहीं दे रहा है, ये फूलझड़ी तो हमारी थी--

कई आवाजें। वे परेशान हो कर नहीं-नहीं, अरे-अरे करने लगे।

—मडाम!—वे घबरा कर उछल से गये। किसी ने उनके पीछे फटाका फोड़ा था।

उसके बाद एक साथ कई खिलखिलाहटें वहां फैल गयीं, उस कमरे में ही नहीं, उसके पीछे घर के अंदर भी उठती हुई, चूड़ियों की खनखनाहट और बर्तनों की टकराहट के साथ मिली हुई खिलखिलाहटें। वे सब उनकी घबराहट देख कर हंस पड़े थे।

लक्ष्मी उस घर में वापस लौट आयी थी और उन्हें मुंह चिढ़ा रही थी!

—संस्कृत विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर

———

प्रानवली की राछरी

संकलनकर्ता : दंगलसिंह

[बुन्देली लोकगीतों का संकलन-प्रकाशन और उनकी शोध सभी का अभाव खटकता है। आख्यानक लोकगीतों-देवी के भजन, पँवाड़े, राछरे आदि की तो विविध वर्णनाएँ (वर्जन्स) प्रकाश आना जरूरी है। सावन में गाये जाने वाले राछरे लोकविश्रुत ऐतिहासिक वस्तु का आख्यान करते हैं, इसलिए उनमें से हरेक के दो पक्षों के अनुकूल दो वर्णनाएं सहज स्वाभाविक हैं, दो से अधिक भी संभावित होती हैं। उदाहरण के लिए, प्रानवली के राछरे में जालौन वर्णना प्राणवली और पन्ना वर्णना अमान सिंह की पक्षधर होगी ही। यहां जालौन वर्णना श्री दंगल सिंह जी ने प्रस्तुत की है, किन्तु वह अपूर्ण है और संभव है कि शेष भाग किसी अगले अंक में दिया जा सके। लेकिन सभी लोक गायकों, संकलनकर्ताओं और विद्वानों से हमारा अनुरोध है कि वे इस राछरे की अन्य या भिन्न वर्णनाएं प्रकाशन के लिए आवश्य भेजने का कष्ट करें।—सम्पादक]

श्रावण में गाये जाने वाला यह राछरा मैंने अपने पिता कुंवर दुर्गसिंह जू देव द्वारा संकलित लोकगीतों से लिया है। वह अपूर्ण है और अकोड़ी के आसपास के महानुभावों से संपर्क साधने पर पूरा होने की आशा तो बंधी है लेकिन अभी पूरा नहीं हो सका। खेद है कि राछरे की धरोहर सुरक्षित नहीं रख पाया और दीमक ने उसे यत्रतत्र नष्ट कर दिया है।

इस राछरे में अकोड़ी के महावीर धंधेरे राजपूत प्रानसिंह की स्मृति ताजा हो जाती अकोड़ी ग्राम जिला जालौन में है, संभवतः वह महाराज छत्रसाल के कोटरा परगना के अंतर्गत रहा हो। प्रानसिंह बहादुरी, साहस, लोकप्रेम और बलिदान का उदाहरण आज तक नहीं मिला, इसी कारण वे लोकगीतों में प्रानवली बनकर पूज्य हो गये।

पन्ना के राजा अमानसिंह की बहिन सहोद्रा अकोड़ी के पंधेरे राजा (जागीरदार) प्राणसिंह को ब्याही थी। १७५३ ई० लगभग अमानसिंह अपनी बहिन को लिवाने अकोड़ी जाते हैं। वहाँ अकोड़ी का किला देखते हैं और मन में ललचा जाते है कि उसे अपने कब्जे में होना चाहिए था। बहनोई के साथ चौपर खेलने में परिहास के दौरान प्राणसिंह ने माता लगाकर अमानसिंह को गाली दी। इस पर अमानसिंह ने अपने बहनोई का गला काटने का प्रण किया। बहिन ने बहुत मना किया, परन्तु वे नहीं माने और पन्ना वापस आये। फिर पन्ना से फौज लेकर जब जाने लगे, तब उनकी माता और पत्नी ने उन्हें रोका। अमानसिंह ने किसी की बात नहीं मानी। प्रस्तुत राछरा यहीं तक रह जाता है।

बाद का इतिहास ब्योना (जिला जालौन) के ठाकुर रावराजा विसुनसिंह जू देव, आयु ८५ वर्ष, ने बताया था कि अमानसिंह ने अकोड़ी पर फौजें चढ़ाईं, पर किला न जीता जा सका। फिर भी अमानसिंह कोशिश करते रहे। इस पर प्राणसिंह अमानसिंह के सामने आये और बोले—'सब की जानें जिन लेव, मुझे मार दो।' अमानसिंह ने बड़ा घटिया काम किया और प्राणसिंह को मार डाला। प्राणसिंह एक त्यागी वीर की तरह खड़ा रहा और उसने अपना सर कटवा लिया। इस कथा का शेष राछरा फिर प्रस्तुत करूँगा।

सदाँ तुरइयाँ रे ना, फूलें सदा ना सावन होय।
सदा न राजा रन चढ़ें, सदा न जोवन होय ॥ राजा प्रानवली के राछरे।
कौना के लड़का कौना की बिटियाँ, प्रानसिंह को दईं हैं बिआय।
सबकी बिटियाँ खेलें मुजरियाँ, हमरी बहिन परदेश ॥
कौना की बाँधों माता जस की मुजरियाँ, कौना के छुएँ दोइ पाँव।
बहिन सहोदरा की बाँधों जस की मुजरियाँ, उनईं के छुइयो दोई पाँव ॥
बाहर सें भीतर गए हैं अमानसिंह, माता को मत लेन।
एक अरज मोरी मानो हो माता, हम बहिन लिवावन जांय ॥
एक कही मोरी मानो बुन्देला बेटा, जइयो कातिक मास।
सावन भादों की नदियाँ रे बाढ़ीं, कौन विध उतरौ रे पार ॥
सावन सोहै रे जुनरी बाजरा, भादों में लटकी धान।
हरकी न मानें बिरजी न मानें, बहिन लिवावन जांय ॥
मोरौ मतौ का लेत बुन्देला राजा, रानी को मत लेव।
बहना सें चल भये कंवर अमानसिंह, रानी के मत लेन ॥

एक कही मोरी मानो दुलइया रानी, बहिन लिवावन जांय।
जो तुम बहिन लिवावन जाओ राजा, हम दूर मायके खों जांय ॥
काल जातीं जो रानी आजईं जइयो, आहो भरम गमाय।
हरकी न मानें हम बिरजी न मानें, बहिन लिवावन जांय ॥
कहना धरे माता जीन पलैंचा, कहना धरे करवाल।
चुल्ला टँगे राजा जीन पलैंचा, उतईं टँगी है करवाल ॥
अपना खाँ सजलये अलल बछेड़ा, बहिन खाँ डोला कहार।
लाल लाल डोला सजे हैं राजा, पचरंग आठ कहार ॥
चारउ सुम्मन मेंहदी रचाई, पूंछ रची सरबोर।
बारन बारन मोती गोये, पिसबारन हीरालाल ॥
··तो सज लये असल बिजुरिया, बुन्देला राजा लये हथियार।
हुनसें चल भये कुंवर अमानसिंह, करन लगे असनान ॥
हाथन चूरा पहनें बुन्देला राजा, एड़िन डरे हैं अड़ग।
हरे कसब को पहरें कुरतिया, बाँधें बेंजनी पाग ॥
कानन कुंडल पहरें अमानसिंह, करया जो बाँधें कटार।
नैनन सुरया आंजें बुन्देला राजा, भौंहन चढ़ी है कमान ॥
सवा लाख की बाँधें जो कलगी बुन्देला राजा, डाँड़ी लफारत जाय
पाँच पान के बीरा जो लगाये, मुख में लेत चबाय ॥
सहीरे सजलये मुसहीरे सज लये, सज गई सब ठकुरास।
कुंवर बुंदेला राजा ऐसे सज गये, जैसें गुलाब को फूल ॥
छींकत पलाने घुड़ला बुन्देला राजा, बरजत भये असवार।
एक कही मोरी मानो बुन्देला राजा, सगुना तौ लेव बिचार ॥
अगुना सगुना बेई बिचारें, जो रन जूझन जांय।
हम का सगुन बिचारें मोरी माता, बहिन लिवा घर आंय ॥
मसके घुड़ला गरद कर डारे, धर लई अकोड़ी की राह।
पहुँचे कोटरा के गेंवड़ें राजा, जे डोला कहाँ खाँ जांय।
कोटरा सहर की सकरीं हैं गलियाँ जे डोला कहाँ के हो आंय।
गलियाँ खुदाकें सड़कें बँधादें, जे डोला दरेरे चले जांय ॥
कोऊ जानै नाव-नवरिया, अमानसिंह हेड़न चले जांय।
हुनसें चल भये कुंवर बुन्देला राजा, पहुँचे अकोड़ी जाय ॥

\+ \+ \+

चंदन मेखें गड़वाई बुन्देला राजा, तँबुआ दये लगवाय।
दोहरी कनातें लग गई बुन्देला राजा, लग गये गिरद बजार॥
धाव रे नउआ धाव रे बरिया, बिरना खाँ लाव बुलाय।
नउआ बारी अरज करत हैं, महलन चलबो होय॥
तहँना सें चल भये कुंवर अमानसिंह, पहुँचे गढ़ी में जाय।
ऊँचे अटा सें उतरी बहिनियाँ भेंटे मइया कंठ लगाय॥
पाँच मुहरें गद्दी धरी राजा, लटक छुये दो पाँव।
राजा कैसे खुसी है मइया मतीजे, कैसे खुसी परवार॥
मौत खुसी हैं मइया मतीजे, मौत खुसी है परवार।
मौतऊ खुसी हैं कुटुम कबीला, खुसी हैं डँगाई के लोग॥
इनसें चल भये कुंवर बुन्देला, डेरन पहुँचे जाय।
धोय मोय गोहूँ पिसाये हैं मइया, मोरे गड़ुवा पियाय झकझोर॥
चढ़ गई तामें तमड़िया बइयाजू रंध गये मुठ चढ़ भात।
चन्दर गार कढ़ी करी राजा मोरे, मैथिन दयेते बघार॥
दार बनाई हरी मूंग की राजा, लौंगन दये ते बघार।
नउआ नें धोती पछौटी रे राजा, बम्हना तिलक लगाये॥

\+ \+ \+

सोने के थार परोसे बइया जू, रूपे कचुल्लन दूद।
सारे बहनोई दोई जेंवन बैठे, जंघा सें जंघा जोर॥
जेंवत में बातें भईं राजा, जीजा विदा कर देव।
तुमरी बिदा नहिं होय बुन्देला राजा, अइयो काति मास॥
जें जूंठें अचवन लागे बुन्देला, पौंछे दुपट्टन हाँत।
एक अरज मोरी मानों रे जीजा, हमकों गढ़िया दिखाव॥
गढ़िया को का देखो बुन्देला राजा, देखो सहर बजार।
गाँव अकोड़ी रे खीनर पर गई, पन्ना बसे गुलजार॥
हटकी न मानी बिरजी न मानी जीजा हमको गढ़िया दिखाव।
आगे सारे पीछे बहनोई, गढ़िया देखन कों जाँय॥
एक खंडा देखे दो खंडा देखे, जो देखे तिखंडा जाय।
देख दास कें ठढ़िरी भये हैं, मन में गए हैं लुभाय॥
बावन गुर्जा देखे अमानसिंह, मन में बस गये पाप।
जीजा की गढ़िया ऐसी बनी है, गुरज गये हैं असमान॥

इनसें चल भये राजा धँधेरे, पहुँचे चौपार नो जाय।
धाव रे नउआ धाव रे बरिया, चौपर लै आव उठाय॥
ऊँचे चौंतरा रेला दुलीचा, चौपर दई फटकार।

\+ \+ \+

जो तुम होते बुन्देला राजा + + लेते धँधेरे ब्याह॥
जितने बोल तुम बोले धँधेरे, इतने बोले नहिं जाँय।
जो हम हूहें असल बुन्देला, ले लेऔ धँधेरे को सीस॥
इनसें चल भये कुंवर बुन्देला राजा मेखें तो दई हुमकाय।
मसके घुड़ला गरद कर डारे राजा, धर लई पन्ना की राह॥
ऊँचे चढ़ चढ़ हेरें बइया जू, मोरे वीरन कलेउ कर लेव।
तुमरो पनिया न पीहों बहनियाँ करहों न अन्नग्रास॥
तुमसें कोऊ नें कछू जो कही है, हमकों देव बताय।
ऐसे बोलन बोले धँधेरे राजा, ऐसे बोले नहिं जाँय॥
तुम सारे वे बहनोई अमानसिंह, तुमरें कौन विचार।
का सारे का बहनोई बहिन मोरी, करते वैरी कैसो दाँव॥
गारी जो देते बहिन लगाकें, कछुअइ बुरो नहिं मान।
गारी जो दई है माता लगा कें बहिन मोरी, ले लेंऊ धँधेरे को सीस॥
कौना पै पहरों बिरना हरीरी पीरी चुरियाँ, कौना पै करहों सिंगार।
सोने की चुरिया पहरों बहिन मोरी, काँच की धरो उतार॥
आग लगे बिरना सोने की चुरियन, काँचई अमर कर देव।
बैठो जो रइयो + + + + + + +॥

\+ \+ \+।

इनसें चल भये कुंवर बुन्देला राजा, मेखें तो दई हुमकाय॥
मसके घुड़ला गरद कर डारे राजा, धर लई पन्ना की राह।
ओंठन पपरी पर गई बुन्देला राजा, मुख की बिरिया गई कुमलाय॥
रीने रीने डोला पालकी राजा मोरे, रीने तो देखे कहार।
रीने तो देखे अमान बुन्देला राजा, आगये रार बढ़ाय॥
राजा जो तुमसें काहू नें कही है बुन्देला राजा, हम ही को देव बताय।
ऐसे बोल बोले धँधेरे माता, ऐसे बोले नहिं जाँय॥
मरद सें तिरिया हम भये री माता, मोरो क्षत्री धरम घट जाय।
गारी जो देते बहिन लगाकें माता मोरी, बुरओ न मानें अमान॥

गारी जो दईती माता सगाकें, लेलेउं धंधेरे को सीस।
बहिन के पांव जो पूजे बुन्देला, उनही पं चढ़ जिन जाव॥
पांच गांव पानन खां दयेते राजा, हथिया दिये कन्यादान।
चुरियन को चांदेलो दओ राजा, लाख लखूरे से बाग॥
गौहुन खां मारा दये बुन्देला राजा, धान घनेरे बांध।
सोने के थारन टोका दोये हैं, राजा अकोड़ी गांव॥
गांठ जोर कन्यादान लिये हैं + + + + +।
+ + + + + + ओई जाई बायजू, ओई के कुंवर अमान॥
कु + + विनय पपरा परते बुन्देला राजा, तुम बिन होती जो बांझ।
बहना सें चल भये कुंवर बुन्देला, पहुंचे रानी ढिग जाय॥
एक अरज मोरी मानो राजा मोरे, बहिन पै चढ़ जिन जाव।
मारों कटारी गरद कर डारों दुलइया रानी, तेंनें जो जेड़ी मोरी बात॥
जो तुम बहिन पै चढ़कें जैहो राजामोरे, खाकें जहर मर जांव।
काल मरतती रानीं आजई मरियो, तुमरे दाग दयें जांय॥
लिख लिख पतियां भेजी अमानसिंह, दइतीं धमना के हाथ।
जे पाती उनें दइयो + + + + + + + +॥
+ + + + + + + + + + + + +।
कोटरा के संयद येह + + + बुन्देला राजा, जे फौजें कहां खां जांय॥
सइयद बाबा खां चादर चढ़ाहों, जे फौजें अकोड़ी खां जांय।
पहुंचे कोटरा की नदिया पै राजा, कौनी + + + सें पार॥
सब कोऊ जैहै ना + + + रमां बुन्देला राजा हड़न जांय।
सबरी फौजें नइया पै बैठी बुन्देला की, नइया अड़ी मझधार॥
पाप पुन्न ना दाबो बुन्देला राजा, सांची तो देव बताय।
पाप पुन्न नहिं दाबें मलहा के जे दल + + + +॥
आपुन तो सजे राजा दुल्हा + + + धंधेरे राजा हम धन किनके अधार।
तुमरे जो आये रानी मईया भतीजे, तुम दुर मइंखां जाव॥
पान जो खाये राजा तुमरे हवन के, धंधेरे राजा मरहैं तुमारे साथ।
+ + + + + + + + + + + + + +॥
+ + + + + + + + + + + + + + +।
पांच पान का बीरा लगाये, धरवाये कथारन मांझ।
भरी सभा बैठे बुन्देला राजा हडस रहो दरबार।

जो कोऊ राजा मोरो बीरा उठावें, देहों तिहाई राज॥
सबरे ठाकुर मुखइ मुख हेरे बुन्देला राजा, बीरा कोउ नहिं लेय।
गाय पै गधा ना चढ़ें अमानसिंह बइया पं चढ़ जिन जाव॥
+ + + + + + + + + + + +।
+ + + + + + + + + + + +॥
बहिन के पांव जो पूजे, उनई पं चढ़ जिन जाव।
पांव जो पूजे पीठ नहिं पूजो, घर ककईया में लेहों मैं सीस उतार॥
ऐसे बोल ऊनें बोले धंधेरे (ककईया) ऐसे बोले नहिं जांय।
मरद से तिरिया हम भये ककईया, क्षत्री धरम घट जाय॥
हरकी न मानी बरजी न मानी ककाजू, करहों अकोड़ी को राज।
लिख लिख पतियां भेजीं बइया जू. दइयो ककाजू हाथ॥
अबकी अनी बरकाओ ककइया राजा, राखो चुरियन की लाज।
बार बार समझाओ बइया जू मोरी, उनके लखतरें एकउ न आय॥
मोरी कही ना माने बईयाजू, अमना खों टेरो है लोग।
+ + + + + + + + + + + +॥
बैरागढ़ की सारदा धंधेरे राजा + + + मनियागढ़ है नाम।
उतै + + गंया में घर दये धंधेरे राजा + + + तरवार॥
अपनी पराई न चीन्हें धंधेरे राजा, सबरी + + कतल कर डार।
ऊँचे अटा सें उतरीं दुलैया रानी, रानी पलंग लये लटकाय॥

———

सैरकाव्य की नयी शैली के प्रवर्तक आचार्य द्विज रामलाल पाण्डे

नर्मदा प्रसाद गुप्त

बुंदेली सैरकाव्य मध्ययुग के लोककाव्य की एक ऐसी विधा है जो १८वीं शती के उत्तरार्द्ध से २०वीं शती के पूर्वार्द्ध तक लगभग दो सौ वर्ष लोकमानस में ऐसे छायी रही जैसे आसमान में वर्षा के बादल। विचित्र तो यह है कि बुंदेली फागकाव्य को जितनी चर्चा हुई, सैरकाव्य उतना ही उपेक्षित रहा। जो भी प्रच्छन्न प्रयत्न हुए, वे सैरकाव्य के इतिहास और ऐश्वर्य की खोज करने में असमर्थ रहे इस कारण कुछ भ्रम कुहरे जैसे फैल गये और सही तथ्य अंधराये से पड़े रहे। उदाहरण के लिए, सैरकाव्य के उद्भव और विकास की चिन्ता किये बिना यह मान लिया गया कि सैर साहित्य के जन्मदाता गंगाधर व्यास थे और सैर का झुमका बनाना तथा सैर की गम्मत एवं अखाड़ेबाजी की प्रणाली उन्हीं की देन थी यह ठीक है कि सैर के उद्भव-काल में सैर चार चरण की होती थी और १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में सैरों की पोथियों का प्रकाशन भी हुआ था, पर अभी तक की खोज में मुझे श्रीनगर (जिला हमीरपुर) निवासी पं० भैरोंलाल ब्राह्मण (१७४३ ई०) के चार चरणवाले सैरों की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है, जिसका प्रतिलिपिकाल माघ सुदी १४ संवत् १९१८ (सन् १८६१ ई०) है। उनके बाद के सैरकार छतरपुरवासी द्विज रामलाल (१८२० ई०), साहनगरवासी दरयावदासदउवा (१८२४ ई०), झाँसीवासी भग्गी दाऊ जू 'श्याम' (१८२३-८३ ई०), कवि लछमन (१८४९ ई०), द्विजकिशोर (१८४२-५७ ई०) आदि थे, जिन्होंने गंगाधर व्यास के पूर्व इस काव्यधारा को उत्कर्ष तक ही नहीं पहुँचाया, वरन् सैर की झूमका शैली, गम्मत और फड़बाजी को भी परवान चढ़ाया था। यहाँ तक कि सैरों में प्रबंध रचने की परम्परा कायम कर उसे समृद्ध किया था। सैर झूमका शैली का प्रवर्तन द्विज रामलाल ने किया, जिसका अनुसरण लछमन, गंगाधर व्यास आदि सैरकारों ने किया है। उन्होंने सैरों में खण्डकाव्यों की रचना भी की और उसी परम्परा में दरयावदास दउवा, द्विज किशोर आदि ने अपने लोकप्रबंध लिखे। जहाँ तक सैर

की गम्मत और फड़बाजी का प्रश्न है, उसके प्रामाणिक साक्ष्य गंगाधर व्यास के पूर्व कई कवियों में मिलते हैं। द्विज रामलाल का अपने दल के साथ मिर्जापुर जाकर फड़बाजी में भाग लेना एक प्रसिद्ध घटना कही जाती है। भग्गी दाऊ जू की पंक्ति —'मऊयारिन का ओड़छे में चंग छुड़ाया।' गवाह है कि उन्होंने ओरछे के सैर-दंगल में मऊरानीपुर के दल को पराजित किया था। द्विज किशोर ने अपने ग्रंथ 'पारीछत को कटक' में दर्पीली भंगिमा में लिखा है—'पढ़ते किशोर सिहिर ढोलक बाजे गत की।' इन कतिपय प्रमाणों से स्पष्ट है कि सैरों की गम्मत और फड़बाजी का विकास पहले ही हो चुका था। अभी तक की खोजों और प्रमाणों के आधार पर द्विज रामलाल पाण्डे ही सैरकाव्य की झूमका शैली, गम्मत, फड़बाजी और सैर-प्रबंध-परम्परा के प्रवंतक ठहरते हैं।

इस प्रवर्तक व्यक्तित्व का किसी भी ग्रंथ में कोई उल्लेख तक नहीं हुआ, यहाँ पहली बार उनके संबंध में संक्षिप्त परिचय और कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। छत्रपुर निवासी इस कवि के जन्म और मृत्यु-काल के संबंध में अभी तक मुझे कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हुआ, किन्तु उनकी रचना—परिक्रमा के झोलना में निम्न पंक्तियों द्वारा उनका परिचय मिलता है—

छत्रसाल नै बसायो सहर छत्रपुर येह।
रामलाल दुज ता बसै मऊ दरवाजे गेह ॥३॥
गादी परमानंद की आछो प्रघटो संत।
रमो टौरिया बीच मै अंमरदास महंत ॥८॥

उपर्युक्त दोहों से प्रकट है कि कवि छत्रपुर के मऊ दरवाजे के निकट निवास करता था और उस समय टौरिया के महंत संत अमरदास थे। कवि के परिवार-जन आज भी वहीं रहते हैं और उनसे कवि का वंशवृक्ष भी प्राप्त हुआ, जो इस प्रकार है—
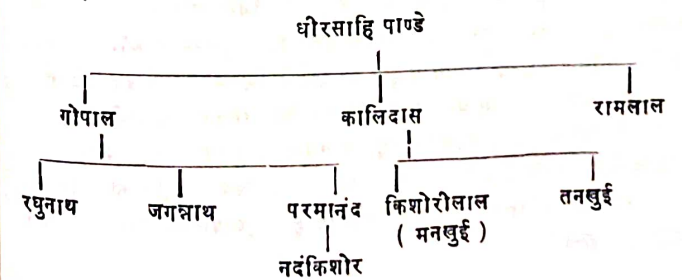
पं० नंदकिशोर पाण्डे कवि के नाती हैं और अभी गत वर्ष ही साकेतवासी हुए हैं। उनसे साक्षातकार में मुझे पता चला कि उनके पिता पं० परमानंद पाण्डे की जो छत्रपुर सैर-अखाड़े के पाण्डे दल के अग्रणी माने जाते हैं और जो कवि के अनुज गोपाल पाण्डे के पुत्र थे, मृत्यु ११० वर्ष की आयु में सन् ११३६ ई० में हुई थी। इस तरह पं० परमानंद का जन्म १८२६ ई० में ठहरता है और इस आधार पर कवि का जन्म १८०० ई० या उससे पूर्व माना जाना उचित है। दूसरे दोहे (क्र० ८) से वे जानराय जानराय टौरिया के महंत अमरदार के समकालीन प्रतीत होते हैं। इस टौरिया का निर्माण सिद्ध परमानंद ने सन् १६०३ ई० में करवाया था और सिद्ध महंत से रामगुलेरादास और अयोध्यादास के बाद टौरिया की गद्दी महंत अमरदास को मिली थी। इस अनुमानित गणना से भी कवि १८०० ई० के लगभग का सिद्ध होता है।

कवि की रचना 'बारामासी' में रचनाकाल और लिपिकाल अंकित नहीं है, परन्तु उस पूरे संग्रह की जिसमें 'बारामासी' संग्रहीत है, अधिकांश कृतियों का लिपिकाल सं० १९१९ (१८६२ ई०) दिया गया है। अतएव एक ही लिखावट और स्याही होने के कारण इस रचना का लिपिकाल भी १८६२ ई० मानना उचित है। इस प्रकार कवि का रचना-काल १८२०-१८६२ ई० के बीच होना चाहिए।

अभी तक कवि की चार कृतियाँ—बारामासी, धनुष पचासा, अंगदवाद एवं झोलना संग्रह हस्तलिखित रूप में प्राप्त हुई हैं। 'बारामासी' के प्रारम्भ में विष्णु, गणेश, सरस्वती और गुरु की वन्दना है। साथ ही कवि ने 'पड़ते हैं सैर' और 'निज राम नाम सैर सप्त पड़ सुनाइ कें' लिखकर सैरों में बारामासी रचने का संकल्प स्पष्ट किया है। उपरान्त बारह मासों में गोपियों और राधा की बिरह-व्यथा का वर्णन लोकसामान्य रूप में किया गया है। शैलीगत वैशिष्ट्य यह है कि कवि ने सैर के आठ चरणों के बाद दोहे की योजना घत्ते के रूप में की है। संभवतः यह रामचरित मानस की कड़वक शैली का अनुसरण है और लोकप्रबंध में नवीन प्रयोग है। धनुष पचासा में कुल ७६ छंद हैं, जिनमें 'लीला बरनों जन्म से धनुष विवाह प्रमान' अर्थात् जन्म से विवाह तक की रामकथा का वर्णन है। कथा लेखन और विशेष रूप से लक्ष्मण-परशुराम-संवाद में तुलसी का अनुकरण स्पष्ट है, किन्तु विवाह-वर्णन में बुंदेली संस्कारों का क्रमिक विवरण कवि की मौलिकता है। वर्णनों की लोकसहजता सर्वत्र दर्शनीय है। पुष्पवाटिका-प्रसंग का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सिया लछन राम देखे तन मन में चैन है।
सिया हर्ष ना समाइ प्रफुलत सुबैन है।
छिप रही फूल बाग में लगाइ नैन है।
आये हैं नाथ हमरे मनसा के दैन है॥
मनसा के दैन आये फूलन के लाने।
यह भली भई भैंट बैन नैन सिरांने।
यैसे मिले हैं नाथ जैसे मिले हिरांने।
कयें राम लछन चलो जनक दोरे जानें।

धनुष पचासा में ऐसे सहज उपमानों का संयोजन हुआ है, जो अन्यत्र कम मिलते हैं। 'यैसे मिले है नाथ जैसे मिले हिराने' में जितनी सहजता है, उतनी ही खोयी चीज पाने पर तृप्ति की तीव्रता। बुंदेली शब्दों— खटक, हुमसो, निवाये आदि से भावों को सूक्ष्मता और गहराई मिली है। सैर छंदों में नवीन प्रयोग किये गए हैं, दो स्थलों में दो-दो चौकों में चौथे चरण के रूप में टेक की योजना एक उदाहरण है।

अंगदवाद की प्राचीन प्रति नहीं मिल सकी, नवीन अपूर्ण प्रतिलिपि में केवल ३८ छंद हैं। उसमें रावण-अंगद-संवाद को सैरों में वर्णित किया गया है। झोलना के संग्रह में तीन झोलना हैं। पंचरंग झोलना में ४१, मिर्जापुर के झोलना में २९ और छत्रपुर की परिक्रमा के झोलना में ३४ छंद हैं। कवि ने झोलना में झूमका शैली का प्रयोग किया है। एक छंद या चौक के तीन चरणों के बाद चौथा चरण टेक का है और एक झूमका में ४, ७, ११, १२ चौकों की विविध मालाएं हैं। कृतियों के अतिरिक्त और भी स्फुट सैर गायकों के रजिस्टरों में संग्रहीत होंगे, सहृदय पाठकों से अनुरोध है कि वे इस लेखक को भेजकर सहयोग करें। मुझे कवि का एक झूमका प्राप्त हुआ है, जो फड़ के लिए लिखा जान पड़ता है। उसमें तीन चरणों के साथ टेक मिलाकर एक चौक बनाया गया है और इस तरह के दस चौक रखे गये हैं। इन उदाहरणों से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि सैर की झूमका शैली के प्रवर्तक दुज रामलाल है, बाद में गंगाधर व्यास ने तो एक झूमका में चार चौकों की संख्या निर्धारित की थी।

द्विज रामलाल की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसने सैर लोककाव्य को अपना कर उसमें विविध प्रयोग किए। मुक्तक और प्रबंध दोनों में सैरों को ही महत्व दिया। जिस प्रकार ईसुरी ने केवल चौकड़िया फागों को उत्कर्ष पर पहुँचा

दिया, उसी प्रकार द्विज रामलाल ने सैरों को। ईसुरी तो केवल मुक्तककार थे, पर द्विज रामलाल प्रबंधकार भी थे। प्रबंधों में सैरों का समावेश उन्होंने सबके पहले किया। उनके बाद जिन कवियों ने सैरकाव्य की प्रबंधधारा में योग दिया, उनके प्रबंधों की अपेक्षा धनुष पचासा में भाव और भाषा की दृष्टि से अधिक लोक-सहजता है। सैरों के प्रसिद्ध रचनाकार गंगाधर व्यास के प्रबंधों में भी स्थानीय रंग, ग्राम्यता और लोकसहजता का वह सामंजस्य नहीं मिलता, जो इस कवि में है। दरअसल कवि के सम्पूर्ण कविकर्म के प्रकाश में आने पर उसका सही मूल्यांकन अच्छी तरह से हो सकेगा। फिर भी, खोज में मिली रचनाओं के आधार पर द्विज रामलाल सैरकाव्य की नयी शैली के प्रवर्तक आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

—शुक्लाना, छतरपुर, म० प्र०

———

काली जोत के दावेदार

—डा० बलभद्र तिवारी

चसनाला के ठीक दूसरी ओर मोजुडीह कोलवासरी में बसी अहमद को जब नौकरी मिली थी, वह अकेला था। बिहार के सुदूर प्रदेश से आजीविका कमाने आया था। अब्बा ने उसका निकाह पढ़ा दिया और जिम्मेवारी के बल पर उसे नौकरी करने को प्रेरित किया था। बसी अहमद शायद नौकरी न करता, पर मुनिया के खातिर उसे ऐसा करना पड़ा। दो साल की मुनिया 'सोने के रंग की मुनिया,' 'फूल सी खिलती मुनिया' कितनी उसकी उपमाएं बनी थीं, परनी से विदा लेते समय वह भीतर से आंदोलन में रहकर भी शान्त बना रहा। उसे अब्बा ने गरीबी का वास्ता दिया था। उन्नीस साल पहले वह यहाँ आया था अपना परिवार लेकर। उसने मोजुडीह की खोखली धरती को अपनी माता बनाया था और उसी की गोद में नया जीवन प्रारंभ किया था। खोखली माता के ऊपर कोयले के पहाड़ लगा दिये गये। बसी अहमद अब भी पहाड़ों पर कोयला चुनता है। पिछले कई बरस से चुनता आ रहा है। कोयला के सिवाय चारों तरफ कहीं कुछ भी तो नहीं है। पूरे झरिया, धनबाद में कोयला ही कोयला है। कोयला आम आदमी की रोटी और पूंजीपति वर्ग का सोना है। सफेद कपड़े पहने एकबारगी रेल में सफर कर जाइये, कपड़े नीले स्याह हो जायेंगे, फिर दिनरात काम करने वालों के दिल में क्या होगा, सोचा जा सकता है।

बसी अहमद की मुनिया अब इक्कीस बरस की हो आई है। आम मुसलमानों का रिवाज, लड़की को घर से बाहर न निकालो, बारह बरस के बाद बुरका डलवा दो। मुनिया और उसके बाद शबाना और नजनिया तीनों इतनी बड़ी हो गई हैं कि बसी अहमद को अब अल्लाताला की मेहरबानी पर भरोसा है। एक दिन वह अपनी बेटियों का विवाह करके निजात पा जायेगा। उसका लड़का रफीक अहमद फिर कुछ भी करे उसे परवाह न होगी। उन्नीस साल पहले सकीलडीह की कोलवाशरी में तीन सौ मजदूर थे। आज नौ सौ मजदूर हैं। पूरी कलोनी का नक्शा ही बदल गया है। जहाँ पहले रात में आने-जाने में दहशत होती थी,

वहाँ अब बिजली के लट्टू चमकते है। एक अस्पताल भी खुल गया है। सारे मजदूरों का बटवारा मंदिर हनुमान जी, मंदिर काली जी, मंदिर शंकर जी, मंदिर झूलेलाल, मंदिर राम जी में हो गया है। सिक्खों का मिनीसाइज गुरुद्वारा मुसलमानों को मिनी साइज मस्जिद है लोगों के उठने-बैठने से उनके धर्म की घोषणा की जा सकती है इधर हाल में कुछ नए ईसाई भी आ गए हैं, उनकी संख्या दस है, पर गिरिजाघर के बनने में कठिनाई है। दो मैथाडिस्ट है तो तीन कैथोलिक और बाकी प्रोटेस्टेंट। इसलिए चर्च अभी चलित चर्च है कभी किसी के यहाँ, कभी किसी के यहाँ। धार्मिक कट्टरता प्याज के छिलकों की भाँति ओढ़कर सभी धर्म के लोग पिछले बीस साल से अपना जीवन चला रहे हैं।

बसी अहमद तेज मिजाज का है, अतः उसे व्यवस्था की ओर से बुरी दृष्टि से देखा जाता है। अधिकारियों का कहना है कि वह कर्मचारियों को भड़काता है, जब-तब बोनस की चर्चा करता है और बसी अहमद की बात ही दूसरी है। पिछले चसनाला खान के हादसे के तुरंत बाद उसने सारे मोजुडीह के मजदूरों को इकट्ठा किया था और शोषक अफसरों के साथ अदालती जाँच करवाई थी। कई रात वह इन बड़े अफसरों के साथ बहसों में लीन रहा था और मरने वालों के परिवारों को पेन्शन का मुहीम चलाया था। बसी अहमद तभी से अधिकारियों की नजर में खटकता है। उसकी उपस्थिति से अच्छों-अच्छों के हौसले पस्त हो जाते हैं। पिछली दीवाली में मैनेजर का कहना था कि सरकारी कोयला उत्पादन और सफाई में कमी हो गई है। सभी मजदूरों को ओवर-टाइम काम करना पड़ेगा। किसी को भी छुट्टी नहीं दी जायेगी। और हुआ भी यही। जॉन कई रात काम करने के बाद बीमार पड़ा, तो डाक्टर ने आराम देने वाला सर्टिफिकेट ही न दिया। उसे भी हर ड्यूटी करके एक सौ तीन बुखार में वाशरी भेजा गया था। रास्ते में बसी अहमद मिल गया, तो जान रो पड़ा और फिर बसी अहमद ने उसकी पाली का काम किया। जॉन अब भी बसी अहमद का शुक्र गुजार है। जॉन की ही बात नहीं है, वाशरी में रहने वाले गुरुदयालसिंह, भीखूराम पंडित, घमनानी, मुहम्मद बख्श आदि अनेक व्यक्तियों के हृदय में बसी अहमद के प्रति सम्मान की भावना है। कोयले का पहाड़ खुली खदानों से कोयला निकाल कर बना है। इन खदानों में भीतर से आग लग जाती है। पहाड़ भीतर ही भीतर जलता जाता है। यदि छोटा-मोटा टीला सा हुआ, तो काले से गोरा हो जाता है, बड़ा पहाड़ भी खोखला हो जाता है। इन्हीं पहाड़ों पर बसी अहमद और उसके साथियों ने दो दशक बिता दिये, इसलिये इनका चप्पा-चप्पा जाना हुआ है। कोयला की खुदाई

करने से लेकर उसकी सफाई तक का कार्य ये मजदूर करते हैं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जब वाशरी का सायरन न बजे। कुछ साल पहले तक सायरन सुनते ही महिलाओं के दिल धड़कने लगते थे। कहीं उनमें से किसी के पति के साथ दुर्घटना न हो गई हो। चसनाला की दुर्घटना के बाद वे अब सायरन सुनकर पहाड़ की ओर भागती हैं। हाय हाय तौबा की आवाज कम होती है। मौत जैसे आम हो गई है।

कोलवाशरी मैनेजर ने मजदूरों का बीमा करवाया है, पर कटता केवल दस रुपये महीना है। ज्यादा का बीमा कराने से वाशरी को अधिक रकम देनी पड़ती है, इसलिये ऐसा किया गया है। बसी अहमद पढ़ा-लिखा कम है, परन्तु जीवन खपा दिया है उसने कोयले पर हाथ रखते-रखते। इसलिये कोयले की जोत में वह मजदूरों को समान हिस्से का भागीदार मानता है। उसकी यही बात मैनेजर को बुरी लगती है कि मजदूर समान रूप से हिस्सा पाने की माँग करें। इसी कशमकश में कभी-कभी ऊँच-नीच बातें भी बसी अहमद से हो जाती हैं। पूजा की छुट्टियों में कुछ हिन्दू काम पर नहीं गये, अपने वतन चले गये, तो बाकी लोगों को काम ज्यादा पड़ गया। मैनेजर का कहना है कि वह सरकार की डाटें नहीं सुनेगा। आदमी चाहे वतन जाये चाहे नरक, काम तो उतना ही होगा, जितना रोज होता था। इसलिये कोलवाशरी का प्रत्येक मजदूर हर दिन प्रायः बसी अहमद होता था। जो ऐसा बनना पसन्द नहीं करता, उसे किसी न किसी प्रकार बना दिया जाता था मन में आक्रोश और मन में विक्षोभ के साथ काम करने वाला मजदूर जब अपने मुखिया की ओर दिखता तो वह दौड़ दौड़ कर अपने शरीर को पचाते दिखता, मजदूर भी वही करने लगता। बसी अहमद जैसी अनेक की स्थिति है।

मुनिया अब्बा को रोज नाश्ता बनाती और जाने से पहले आग्रह करके जबरदस्ती दो रोटियाँ और आचार को निगलवा देती। उसे अपनी उतनी फिक्र नहीं है, जितनी अब्बा की। रफीक अहमद नकारा है। कहीं वह लड़का होती तो अब्बा की जिम्मेदारी में हिस्सा बँटाती, पर वही तो अब्बा की चिन्ता का विषय है। उसके ब्याह के लिए ही बसी अहमद जी तोड़कर काम करता है। इसी साल वह दो महिने की छुट्टी लेगा और कोई अच्छा लड़का तय कर आयेगा। वह सैय्यद है। शेख लोगों में वह विवाह कर सकता है, पर अन्यों में नहीं। कोलवाशरी में कोई ऐसा परिवार भी नहीं है, जिसमें इतना बड़ा लड़का हो कि बसी अहमद उसकी आरजू-मिन्नत करके कुछ करे। मुनिया ज्यादा क्या दो क्लास हिन्दी भी नहीं

पढ़ी है। उर्दू के कुछ हरूफ अब्बा ने सिखाये थे, अब थोड़ा-थोड़ा लिखने लगी है। कोलवाशरी में स्कूल नहीं है। जो एक प्राइवेट चलता है, उसमें इतनी बड़ी लड़की कैसे जायेगी ? यही विचार बसी अहमद को खाये जा रहा है।

अचानक एक हरकारा आया। बसी अहमद को मैनेजर ने बुलाया है। जल्दी-जल्दी दो रोटियाँ निगल के बसी अहमद दफ्तर की ओर बढ़ा। वहाँ दरबान से दुआसलाम की। भीतर जाते ही उसने देखा कि मैनेजर कुर्सी पर बैठे नहीं, पास खड़े हो गये हैं। डिप्टी साहब, असिस्टेंट साहब और दो बाबू टेबिल के चारों ओर खड़े हैं सब गुमसुम हैं। बसी अहमद ने झुककर सलाम किया। बदले में उसे सुनने को मिला—"तो बसी अहमद तुम अपनी आदतों से बाज न आओगे ? लगता है तुम्हारा इंतजाम करना होगा।"

—मैनेजर साहब क्या बात है ? मैंने क्या किया, जो आप गरम हो रहे हैं।

--तुम अब कोलवाशरी के नेता ही नहीं, उन स्मगलरों के सरगना भी बन गए हो।

—कैसी बात करते हैं साब ? मैं आपसे अपने हक की बात जरूर करता हूं, पर वाशरी की जायदाद को कुछ नहीं होने दूंगा।

—चुप रहो। तुमने अब तक बीस हजार के कोयले की चोरी कराई है।

—गलत बात कहते हुए आपको शर्म आनी चाहिए।

मैनेजर भड़का और शीघ्रता से आकर एक जोरदार झापड़ उसने बसी अहमद को रसीद कर दिया। असावधान बसी अहमद फर्श पर लोट गया। मैनेजर ने दरबान को इशारा किया, इसे दफ्तर के बाहर कर दो। जब तक बसी अहमद संभले, चार आदमियों ने उसे दफ्तर से बाहर ला पटका। बसी अहमद बेहोश हो गया। होश में आया, तो वह कोलवाशरी के अस्पताल में था। नेपथ्य से मैनेजर की आवाज उसने सुनी—'डाक्टर इसे अभी संभाल लो।' पास ही में मुनिया, उसकी माँ और दो चार मित्र मजदूर खड़े थे। बसी अहमद के बीमार होने की खबर तेजी से फैल गयी। लोग उसे देखने आने लगे, पर वह आँखें बंद किये रहता। उसे मैनेजर का झापड़ और कटु शब्द बार-बार याद आ रहे थे। उसने आज तक कोई गलत काम नहीं किया और उसे स्मगलिंग का चार्ज लगाया गया था।

बसी अहमद आज अस्पताल से रिलीज होगा। सारे मजदूरों को पता चल गया कि उसे मैनेजर ने मारा है। कोलवाशरी में सनसनी फैल गयी। बसी

अहमद घर आया, अपने बच्चों को देखा और फिर काम पर चला गया ट्राली में कोयला ढोने। उसने आज पूरब दिशा का कोयला उठाना शुरू किया। ट्राली में वह उस एरिया का भी कोयला भरने लगा, जहाँ से कभी-कभी धुआँ निकलता था। बीच में मुनिया की माँ उसे खाना दे गई। उसने चुपचाप खाना खाया और फिर काम में लग गया। तीन बजे के आसपास उसने ट्राली में कोयला भरना चाहा कि उसका संतुलन बिगड़ा और वह धम्म से गिर गया कि देखते ही देखते वह पन्द्रह फीट चला गया और भीतर के जलते कोयले में भुन गया। सायरन बजा। लोग दौड़े, स्त्रियाँ दौड़ी, बच्चे दौड़े, पर क्रेन से निकलते-निकलते बसी अहमद के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। दफ्तर का बाबू बसी अहमद के डेथ बेनफिट के कागजों पर बेगम से अंगूठा लगवा रहा था। कोलवाशरी के मजदूर आक्रोश में मैनेजर को गालियाँ दे रहे थे। एक ओर बसी अहमद के जनाजे की तैयारियाँ हो रही थीं, दूसरी ओर वाशरी के मजदूर मैनेजर की मुअत्तली की मांग कर रहे थे। बेगम, मुनिया, शबाना और नजरिया के बीच रफीक गुमसुम बैठा हुआ था।

—हिन्दी विभाग, सागर विश्व विद्यालय

———

दो अंतिम गीत

स्व० बद्रीप्रसाद शुक्ल

[तमाम सैलाबों के सामने जूझने वाले अकेले टापू की तरह जो चुपचाप गुनगुनाता रहा और आस्था की किरणें पचाकर गीतों की फसलें उगाता रहा, वह एक निराला कवि था—बद्रीप्रसाद शुक्ल। चारों तरफ से घेरता उलझनों का शिकंजा आज के आदमी को ऐसे कसता है कि उसके भीतर की प्रीति और आस्था की कोयलें छटपटा कर मर जाती हैं, पर इस कवि ने प्रीति की अंतर चेतना को राधा बना दिया है, जो अडिग विश्वास के कृष्ण के साथ हमेशा नाचती है। आज के इस युग में यदि राधा ही होती, तो खुद अपने बदलाव पर ठगी-सी खड़ी रह जाती, लेकिन कवि की चेतन राधा कभी नहीं बदली और अपने कृष्ण की रस-माधुरी में सराबोर रही। नयी काव्य धाराओं के तीव्र बहावों के बीच एक अलग बृन्दावनी मनोभूमि बसाकर उसमें गीतों के वंशीवट खड़े करना शुक्ल जी जैसे कवि का काम है। यहां उसी समर्थ गीतकार के दो अंतिम गीत उसके समग्र व्यक्तित्व की पहचान देंगे, इसी आशा के साथ।—सम्पादक]

प्रीति की धारा सिमिट कर बन गई है आज को राधा,
श्याम की रस माधुरी में प्राण डूबे जा रहे हैं

कृष्ण की बंशी मधुर मन मीन को छलने चली है
अब गली हर गाँव की बनने लगी गोकुल गली है
प्यास अधरों में समाकर कंठ तक आने लगी है,
पी कहाँ के बोल करूणा घोल चातक गा रहे हैं

कौन अपना है, पराया कौन, किससे कौन पूछे ?
फूल किसने, शूल किसने दिए, किससे कौन पूछे ?
ताप आतप का मिटाने दग्ध उर शीतल बनाने,
हृदय आँगन में सजल घनश्याम घिर कर छा रहे हैं।

कामनाएं मिटीं सिमटीं वासनायें सो रहीं हैं
विदा इच्छाएं हुई हैं और चाहें रो रही हैं

आज अपनी नाव धारा के सहारे छोड़ दी है,
फिर भला यह कौन सोचे बहे या उतरा रहे हैं

बाँस की इस बाँसुरी में कौन रस तुमने भरा है
गगन जैसे गुनगुनाता मुग्ध हो सुनती धरा है
कूकती कोयल सरीखी वेदना अन्तर बसाए,
प्राण प्रियतम में समाने के लिये अकुला रहे हैं।

—०—

कब करूं तुम्हारी याद न क्षण भर मुझे भूलते श्याम

प्रातः उठते ही नयनों में छाये रहते हो तुम
झाड़ बुहार करूं लगता अब आये आये प्रियतम
आंगन लीपूं तो लगता है वह छलिया आता है
गोदोहन में देखूं वह, पल पल पर मुस्काता है
कानों में बजती रहती मोहक मुरली निशि याम।

करती हूं श्रृंगार तभी सपनों में खो जाती हूं
दर्पण में भी तो प्रतिबिम्ब तुम्हार ही पाती हूं
झांक रहे हो तुम पीछे से पीछे मुख करती हूं
तुम ओझल हो गए तुम्हारी पग ध्वनि सी सुनती हूं
रुनझुन नूपुर की धुन करते से चलते अभिराम

माखन मथती दही बिलोती दूध गरम करती हूं
प्यारे के आस्वादन हित व्यंजन सहेज धरती हूं
पुरा पड़ोसिन से कान्हा की ही चर्चा चलती है
माखन मिश्री की बातों में मिश्री सी घुलती है
किसे न करती मुग्ध कृष्ण की लीला ललित ललाम।

कालिन्दी का तट हो या हो बंशीवट अति प्यारा
सदन नन्द बाबा का हो या सघन कुंज गलियारा
घर हो अथवा वन हो दिन हो अथवा निशा नवेली
घिरी श्याम से रहती हूं मैं रहती नहीं अकेली
मन मोहन ने मोह लिया मन मोल लिया बिन दाम।

———

झुमक झला परैं

रामनाथ गुप्त 'हरिदेव'
रामकृपाल मिश्र

उमड़ चहूंधा ते सो आये नभमंडल में,
आज घनघोर जोर गजब गला परैं।
कवि 'हरिदेव' मोर शोर करैं चारों ओर,
कोकिला कलापिन के हहल हला परैं।
शीतल समीर वीर विरह बढ़ावै तऊ,
चोखी चंचला की चारु चपल कला परैं।
पावस निशा में यहाँ नहीं लालसा में जहाँ,
होवैं लाल सामें तहाँ झुमक झला परैं॥

बाजत मुरज घन झींगुर झनक झांझ,
भेकन की भेरी वायु बीन बन आई है।
चातक की चाँटी पर नाचत मयूर मंजु,
चोमुख चिराक चारु चंचला सुहाई है।
अंधकार थार मध्य जुगनू रतन राजैं,
तान कोकिलान की समान मन भाई है।
कवि 'हरिदेव' नंद नंद भो अनंदमई,
लाई ह्वै दुचंद वंद्य वरषा बधाई है॥

विज्जु लपका के वड़ी बूंदें टपका के इतै,
रये दब काके डर हमें दपका के हैं।
मुख उलटा के गेह ओई कुलटा के जीनें,
आंख पलटा के श्याम आंख पल टांके हैं।
मैन सर जाके लगे ऐन सर जाके 'मिश्र',
चैन कहैं ताके लगे नैन सर जाके हैं।
मेघ वरसा के कहूँ आये वरसा के तहाँ,
जाओ हरसा के जहाँ करें वर साके हैं॥

पावस की बूँदों के थिरक रहे पाँव

—विद्या 'रश्मि'

पावस की बूंदों के थिरक रहे पांव
पैंजनियां बांध आज, नाच रहा गांव।

शहदीला मौसम, ले आई बरसात
भीग रहा चेतन अवचेतन का गात
हरयाली लहराती, लहराते प्राण
चांदी से दिन दिखते, सोने की रात
बहता है जीवन, ज्यों पानी पर नाव।

झिर-झिर कर बरस रहे गदराये मेघ
बोल उठे, घाटों पर मौन रखे वेद
पानी ने पनघट पर गलबहियां डाल
पनिहारिन भूल गई आंगन की रेत
इन्द्रधनुष कैद हुए, पलकों की छांव।

फूल गई नीम चढ़ा यौवन उन्माद
पीपल से कौन सुने पिछले संवाद
आंखें चौखट पर हैं खिड़की पर मन
वंशी सा बजता है मौसम का नाद
जीत रहा सावन है हारे सब दांव

बांच लिया है शायद तुमने वह पत्र
अंकित है जिसमें प्रिय सोंधा वन सत्र
तब ही संभव है यह सावन यह सुख
जब तुमने याद किया हो मुझको मित्र
जी भर कर हंसते हैं पानी के घाव।

—द्वारा श्री एम० नायन, नया बाजार नं० २, दमोह

राष्ट्रकवि गुप्त जी के काव्य में आंचलिक भावभूमि

स्व० प्रो० श्रीचन्द्र जैन

राष्ट्रकवि गुप्त जी का काव्य बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक विशेषताओं से परिपूर्ण है। जिस प्रकार डा० बृन्दावन लाल वर्मा ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समस्त बुन्देलखण्ड की गरिमा को मुखरित किया है, उसी प्रकार गुप्त जी के काव्य में यत्र तत्र सर्वत्र बुन्देलखण्ड की संस्कृति मुखर हो उठी है। गुप्त जी के आराध्य भगवान राम जब सदैव अयोध्या की स्मृति से पुलकित हुए हैं, तब उस महाकवि की लेखनी अपनी जन्मभूमि को कैसे विस्मृत कर सकती है। वस्तुतः कवि उस धरती से कभी भी अलग नहीं हो सकता, जिसकी धूलि में अपना बचपन विताया है और यौवन तथा वार्धक्य के क्षणों को उल्लास एवं अनुभव से भरा है। यही जन्मभूमि का सतत साहचर्य शनै -शनैः व्यापक बनकर अखिल ब्रह्माण्ड की प्रीति का कारण बन जाता है। गुप्त जी का मानस बुन्देलखण्ड की धरा के विशद प्रांगण में प्रबुद्ध बना और फलतः उसका चिंतन इसी भूमि से निरंतर प्रभावित होता रहा। यह प्रभाव इतना प्रगाढ़ बना कि इसने कवि की प्रत्येक रचना को बुन्देलखण्ड की प्रशस्ति-गान के लिए प्रेरित किया। यह आंचलिक स्नेह कवि के लिए वरदान बना और जननी तथा जन्मभूमि के आशीर्वाद को प्राप्त कवि की वाणी में सारा भारत एकाकार हो गया। काव्यकार के आत्मविश्वास में राष्ट्र का गौरव ध्वनित हुआ और विविधकालीन संस्कृति एकीकृत होकर इस महान साहित्यकार की साधना की आधार भूमि बनी।

आंचलिक भावभूमि की उपादेयता असंदिग्ध है। विशाल भू-भाग में अनेक अंचल होते हैं, जिनकी आंतरिक संस्कृति विशिष्टता लिये हुए होती है। यही आंचलिक संस्कृति अपनी विशेषताओं से सम्बन्धित विस्तृत भूखंड की सांस्कृतिक चेतना को समृद्ध बनाती है और उसके सौंदर्य को द्विगुणित करती रहती है। अंचल एक विशिष्ट भूखंड का बोधक है। यह राष्ट्र की एक ऐसी स्वतन्त्र इकाई है, जिसका सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि दृष्टियों से अपने आप में विशेष महत्व होता है। राष्ट्र के अन्य अंचलों से उसमें समता होते हुए भी कतिपय विशिष्टताओं का होना आवश्यक है। भौगोलिक परिवेश, ऐतिहासिक परम्परा, बोली, पोशाक आदि में अन्य अंचलों से समता रहते हुए भी कतिपय असामान्यताओं का होना आवश्यक है। भारत जैसे बृहत्तर राष्ट्र में अंचल नहीं होंगे, इसकी तो कल्पना ही नहीं होनी चाहिये। हिन्दी क्षेत्र भी इतना विस्तृत है कि इसमें भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भाषा आदि की भिन्नता के कारण ऐसे अनेक अंचल हैं, जिनसे आंचलिक साहित्य की रचना के लिए प्रेरणा मिलती है।

बुन्देलखण्ड निवासी होने के कारण श्री गुप्त जी के हृदय में इस प्रदेश के प्रति ममता होना सहज संभाव्य है। इस (प्रदेश) की सादगी, शौर्य, संतोष, धार्मिकता, स्वाभिमान, निष्ठा, विश्वास, प्राकृतिक सौंदर्य, साहित्य साधना, संघर्षप्रियता, दिव्यता, स्वतन्त्र-प्रेम' भाषा-माधुर्य आदि में भावना एवं कल्पना को विविध रूपों में आह्लादित किया है। बुन्देलखण्डी बड़ा स्वाभिमानी होता है, वह झुकना तो जानता ही नहीं है। अपनी धरती के लिए उसके हृदय में अगाध प्रेम है, वह उसे स्वप्न में भी नहीं भूल पाता है। कहावत प्रचलित है कि बुन्देलखण्ड का निवासी सूखे बेर खाकर भी अपने गाँव को नहीं छोड़ना चाहता है। बुन्देलखण्डी का यह देश-प्रेम उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। श्री गुप्त जी ने अपने काव्य में इस स्वदेश प्रेम की बड़ी सशक्त अभिव्यंजना की है। इस सन्दर्भ में निम्नस्थ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

राम, तुम्हें यह देश न भूले,
धाम धरातल जाय भले ही।
यह अपना उद्देश्य न भूले,
निज भाषा निज भाव न भूले।
निज भूषा निज वेश न भूले।
प्रभो तुम्हें भी सिन्धु पार से,
सीता का संदेश न भूले।

जन्म-भूमि के प्रति यह ममता सिद्धराज प्रबन्ध काव्य में उसी प्रकार अभिव्यंजित हुई है :—

मेरी यह जन्म-भूमि, जननी जगत में
मेरे प्राण रहते रहेगी महारानी ही
किंकर न होगी किसी और नर पाल की।
पंचतत्व मेरी पुण्यभूमि के हैं मुझ में,
कहला रहे हैं यह मुझसे पुकार के,
हम परतंत्र नहीं सर्वथा स्वतंत्र हैं। (सिद्धराज पृष्ठ ४३)

इस प्रकार श्री गुप्त की प्रायः समस्त रचनाओं में मातृभूमि के प्रति प्रेम शब्दायमान है। इसका एक मात्र कारण बुन्देली संस्कृति का प्रभाव है।

पारिवारिक जीवन की विविध ललित झांकियां जो हमें श्री गुप्त के काव्य में देखने को मिलती हैं, वे सब बुन्देली लोकजीवन से परिवेष्ठित हैं। इस सन्दर्भ में इस प्रदेश की वेश भूषा, खान-पान आदि का भी उल्लेख कवि ने बड़ी लगन से किया है। भाभी-देवर का यह विनोद इन पंक्तियों में बड़ा सुहावना लगता है :—

लाईं सखि, मालिनें थीं डाली उसबार जब,
जम्बूफल जीजी ने लिये थे, तुझे याद है ?
मैंने थे रसाल लिये, देवर खड़े थे वहीं,
हंसकर बोले उठे निज - निज स्वाद है।
मैंने कहा—रसिक, तुम्हारी रूचि काहे पर,
बोले—देवि दोनों ओर मेरा रस-वाद है।
दोनों का प्रसाद भागी हूँ मैं, हाय आली आज,
विधि के प्रमाद से विनोद भी विषाद है।
(साकेत-नवमसर्ग-पृष्ठ २१५)

माता सीता कछोटा मारकर पौधों को सींच रही हैं। इस उल्लसित वातावरण को उपस्थित कर कवि ने बुन्देली बाला का एक अभिनव चित्र चित्रित किया है। कछोटा बुन्देखण्डी की वेश-भूषा का एक विशिष्ट प्रकार है :—

अंचल पट कटि में खोंस, कछोटा मारे
सीता माता थी आज नई, धज धरे।
अंकुर हितकर थे शकल, पयोधर पावन।
जन मातृ गर्व मय कुशल, वदन मन भावन।
पहनें थीं दिव्य दुकूल अहा +, वे ऐसे।
उत्पन्न हुआ हो, देह संग ही जैसे।
(साकेत अष्टम सर्ग, पृष्ठ १५६)

कढ़ी-भात बुन्देलखण्ड का प्रिय भोजन है। कांसे की थाली और फूल (एक प्रकार की धातु) के कटोरे इस प्रदेश की सम्पन्नता के परिचायक हैं :—

कढ़ी भात के साथ दाल-रोटी वह घर की।
वह बघार की धाँस, कौंधती टिकुली-तरकी।
वह कांसे का थाल, फूल के भरे कटोरे।
आगे धरते हुए हाथ वे गोरे-गोरे। (अजित, पृष्ठ १२)

बुन्देलखंड की नारी बड़ी स्वाभिमानिनी एवं स्वावलंबिनी है। घर के कार्यों को करती हुई वह व्यापार से संलग्न हो जाती है तथा कृषि-कर्म में भी अपने पति को पूर्ण सहयोग देती है। नारी का यह प्रशस्त स्वरूप अन्यत्र दुर्लभ है। पर्वतों की पंक्तियों, सघन वनों के समूहों एवं सर-सरिताओं के विस्तार ने यहाँ के जीवन को परिश्रमसाध्य बना दिया है। परिणामस्वरूप यहाँ का निवासी बड़ा परिश्रमी और संघर्षशील है।

भगवती सीता के उद्‌गारों में भी बुन्देली रमणी के स्वर प्रतिध्वनित हुए हैं :—

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य मुक्ति फलती हूँ,
अपने अंचल में व्यंजन आप झलती हूँ।
तनु - लता - सफलता - स्वादु आज ही आया।
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया।

श्री गुप्त के काव्य में चित्रित प्रकृति-सुषमा बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौंदर्य की बार-बार स्मृति दिलाती है। इस भू-भाग के वे ही आम, करौंदे, नीम, महुआ, तेंदू, पीपर, वट, सागौन, सहजन, पलाश, बबूल, धामौन, शीशम, करधई, कांकर आदि वृक्ष प्रकृति के सलौने आंगन में सर्वत्र सुशोभित हैं। इसी प्रकार कबूतर, तोता, मैना, मयूर, हंस, बगुला, मृग, सिंह, शेर, तेंदुआ, बनभैंसा आदि विविध जातियों के पक्षी पशु श्री गुप्त की प्राकृति को मनोरम बनाते हैं। डा० कमलाकांत पाठक के शब्दों में बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक रमणीयता पर वे विशेषतः मुग्ध हैं और वार्त्तालाप में उसका वर्णन भी सहृदयता के साथ करते हैं। पर उनके काव्य में स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण प्रायः नहीं हुआ है। उन्हें बसंत, वर्षा और शरद ऋतुएं प्रिय हैं। चिरगांव के पास की प्राकृतिक सुषमा, पहाड़ियाँ और बेतवा की जल-

धारा ने उसे प्राय: उल्लसित किया है। प्रकृति के प्रति वह सहृदय है, उसकी रमणीयता पर वह मुग्ध है तथा उसके प्रभाव में वह तल्लीनता का अनुभव करता है। पर कवि की मनोभावना प्रकृति के अस्तित्व की जीवन-साक्षेप स्थिति ही स्वीकार करती है, उसे किसी आध्यात्मिक चेतना से सम्पन्न नहीं मानती।.... प्रकृति का बाह्य रूप ही वह देखता है, उसके किसी अंतरंग तत्वों का आख्यान नहीं करता। आशय यह है कि प्रकृति प्रेम भी कवि के व्यक्तित्व का एक अंग है, जो उसकी भावुकता को प्रकट करता है। (मैथिलीशरण गुप्त :—व्यक्ति और काव्य पृष्ठ ६७) बुन्देलखण्ड की प्रकृति का वर्णन भी उन्होंने किया है। वेत्रवती की प्रशस्ति में श्री गुप्त जी लिखते हैं :—

वेत्रवती तीर पर नीर धन्य जिसका,
गंगा सो पुनीत जो सहेली यमुना की है।
किंतु रखती है छटा दोनों से निराली जो,
जिसमें प्रवाह है प्रताप और हृद हैं।
काट के पहाड़ मार्ग जिसने बनाये हैं,
देवगढ़ तुल्य तीर्थ जिसके किनारे हैं।

बुन्देलखण्ड के करौंदों की महकती हुई गंध को कवि विस्तृत नहीं कर पता :—

उत्फुल्ल करौंदी कुंज-वायु रह रह कर।
करती थी सबको पुलक-पूर्ण मह मह कर। (साकेत पृष्ठ १७७)

गुप्त जी वार्तालाप में बुन्देली का प्राय: प्रयोग करते थे। खड़ी बोली बोलते हुए भी उनके मुख से अनायास ही बुन्देखंडी शब्दों की झड़ी-सी लग जाती थी। निज बोली का यह प्रेम उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। ग्राम्यत्व दोष की उपेक्षा करते हुए श्री गुप्त ने अपने प्रबन्धकाव्यों एवं खंडकाव्यों में बुन्देली शब्दों कहावतों तथा मुहावरों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। साकेत में जीजी, बिरछे, कछोटा, करौंदी, रोरा, ठट्ठ, आदि शब्द बुन्देली से गृहीत कर यत्रतत्र संजोये गए हैं। इसी प्रकार बुन्देली कहावतों का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर हुआ है।

राम-राम कहना (परित्याग करना) तथा सुआ उड़ा देना (बना बनाया काम बिगाड़ना) कहावत बुन्देलखंड में विशेष प्रचलित है :—

ओ क्षण भंगुर भव, राम राम। (यशोधरा सं० २००७, पृ० २०)
हरे, हाय क्या से क्या हुआ।
उड़ा ही दिया मंथरा ने सुआ। (साकेत, पृष्ठ २३१)

सांस रुकना (सांस रुकबो) सांस चलना (सांस चलबो) डूब मरना (डूब मरबो) विष पीना (जहर खाबो) मुंह फेरना (मोंह फेरबो) झख मारना (झख मारबो) मुंड़ फोड़ना (मूंड़ फोरबो) मीन मेख करना (मीन मेख निकारबो) धूल में सानना (धूर में सनबो), छाती फटना (छाती फटबो), सुचमं पर मरते हैं (चाय पै मरबो) दिन पर दिन गिनो (दिन गिनबो) आदि अनेक बुन्देली मुहावरे श्री गुप्त जी ने प्रयुक्त किये हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि उनमें बुन्देलखण्ड के प्रति अगाध प्रेम है। श्री गुप्त जी की समस्त साधना बुन्देलखण्ड की धरती आराधना के रूप में हुई है। अतः उनकी आशा-आकांक्षा, चिन्तन, मनन, विश्वास, कल्पना, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचार धारा आदि बुन्देलखण्ड के वातावरण से सर्वथा समन्वित है। उनकी लेखनी से चित्रित कौटुम्बिक जीवन के विविध चित्र बुन्देलखण्ड के पारिवारिक परिवेश से परिवेष्ठित हैं। संक्षेप में यह कहना सर्वदा समुचित ही है कि श्री गुप्त जी काव्य-साधना की भावभूमिका बुन्देलखंड जैसे पावन-पुनीत प्रदेश की संस्कृति एवं सभ्यता से चिरपोषित है। कवि का भाव-जीवन बुन्देली मनोलोक का प्रतिरूप ही है।

—००—

कवि जयगोविन्द वाजपेयी

देवेन्द्र

कवि जयगोविन्द वाजपेयी रीतिकाल के एक अच्छे कवि हो गये हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश हिन्दी साहित्य अभी तक उनसे एक प्रकार से अपरिचित ही है। हिन्दी साहित्य में प्रारम्भिक इतिहासकारों-गार्सा द तासी, जार्ज ग्रियर्सन, शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि-ने जयगोविन्द वाजपेयी का कोई उल्लेख नहीं किया। शुक्ल जी के पश्चात् यों तो अनेक इतिहास-ग्रंथ अस्तित्व में आये हैं, किन्तु इन ग्रंथों के लेखकों ने इतिहासकार के दायित्वों का भली प्रकार निर्वाह न करते हुए प्रायः पूर्ववर्णित सामग्री के आधार पर ही ग्रन्थ लिखे हैं। इतिहास के अज्ञात पहलुओं की ओर प्रायः लेखकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि हिन्दी के अनेक अच्छे कवि अभी तक प्रकाश में नहीं आ सके हैं।

जयगोविन्द वाजपेयी का सर्व प्रथम उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की १९३८-४० की खोज रिपोर्ट में हुआ है। इसमें ७३ संख्या पर इनकी एक कृति "कवि सर्वस्व" का विवरण दिया गया है। खोज रिपोर्ट में इस रचना से आदि और अन्त के कुछ छन्द उद्घृत हैं। अन्त में ग्रन्थ की पुष्पिका भी दी हुई है। पुष्पिका से कवि के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं। पुष्पिका इस प्रकार है—इति श्री मत्पद वाक्य पारावारीण महामहोपाध्याय महामहिम महाकवि श्री मण्डन तनयेन जयगोविन्देन वाजपेयिना विरचिते कवि सर्वस्वे शब्दार्थोभयालंकार निरूपणो नाम दशमः परिच्छेदः ॥१०॥ समाप्तोयं "कवि सर्वस्व" नामा ग्रन्थः संवत् १७६५ वर्षे ॥ असाढ़ मासे कृष्ण पक्षे ॥ सप्तमांतिथौ ॥ पतंग वासरेमध्ये ॥ गढ़ पहरा मध्ये ॥[1]

पुष्पिका के अनुसार जयगोविन्द वाजपेयी मण्डन कवि के पुत्र थे। हिन्दी में मण्डन नामधारी अनेक कवियों का पता चलता। उनमें से एक जैंतपुर (बुन्देल-

---

१. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सत्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, संख्या ७३ नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

खण्ड) निवासी मण्डन भी हैं, जिन्होंने रस रत्नावली, नयन पचासा, जनक पचीसी आदि ग्रन्थों की रचना की है। इन्हीं मण्डन का उल्लेख शिव सिंह सेंगर, ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, आचार्य शुक्ल आदि ने अपने इतिहासों में किया है। उपर्युक्त खोज रिपोर्ट में कवि परिचय के अन्तर्गत यह संभावना व्यक्त की गई है कि यही मण्डन जयगोविन्द बाजपेयी के पिता जान पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण नहीं दिये गये। हमने इस सम्बन्ध में विस्तृत छानबीन की है। कवि मण्डन की रचनाओं का भी निरीक्षण किया है। यद्यपि जैंतपुरी और "रसरत्नावली" आदि के रचयिता मण्डन ने कहीं भी पुत्र रूप में जयगोविन्द वाजपेयी का उल्लेख नहीं किया तथापि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जयगोविन्द बाजपेयी के पिता जैंतपुर निवासी यही मण्डन कवि हैं। वे तथ्य इस प्रकार हैं—

१. उपर्युक्त उद्धृत पुष्पिका में मण्डन को "महाकवि" कहा गया है। जैंतपुर निवासी मण्डन के लिए भी इस विशेषण का प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिए सरोजकार ने मण्डन के परिचय में लिखा है—"ये कवि बुन्देलखण्ड में महान कवि हो गये हैं।[1] मण्डन कृत "रस रत्नावली" की जो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, उनकी पुष्पिका में भी मण्डन को महाकवि लिखा गया है। यथा—"इतिश्री मन्मंडन महाकवि विरचिता यां रस रत्नावल्यां भाव, विभाव, संयोग वियोग नाम चतुर प्रबन्ध इति रस रत्नावली संपूरनम् समाप्त"।[2]

२. पुष्पिका से ज्ञात होता है कि कवि सर्वस्व की उक्त प्रति "गढ़ पहरा" में प्रतिलिपित की गई। वस्तुतः जयगोविन्द कहाँ-कहाँ रहे, इस विषय में कुछ ज्ञात नहीं हो सका। फिर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह गढ़ पहरा या उसी के आस-पास किसी राजा के यहाँ अवश्य रहे होंगे। "गढ़पहरा" वर्तमान समय में सागर जिले के अन्तर्गत है, जो बुन्देलखण्ड के ही क्षेत्र हैं[3] और —"रस रत्नावली" आदि के रचयिता मण्डन भी बुन्देल खण्ड के ही थे।

---

१. शिवसिंह सरोज -संपादक- डॉ० किशोरी लाल गुप्त, पृष्ठ ७७५ प्रथम संस्करण।

२. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण, संख्या २९२ बी०, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

३. बुन्देलखण्ड का इतिहास (पहला भाग)—दीवान प्रतिपाल सिंह, पृष्ठ ७, प्रथम संस्करण।

३. राजा जयसिंह ने अपने ग्रन्थ "काव्य रस" में हिन्दी के दो कवियों का उल्लेख किया है। एक मण्डन का दूसरे जयगोविन्द वाजपेयी का। इन दोनों कवियों की रचनाएँ उन्होंने उद्धृत की हैं। मण्डन की "रस रत्नावली" से रस-लक्षण सम्बन्धी एक दोहा उद्धृत किया गया है जो इस प्रकार है—

कवित सुनै नाटक सुनै जिय में हरषु जुहोइ।
मंडन तासो रस कहै रीझ रहै मन गोइ ॥४॥

जयगोविन्द के "कवि सर्वस्व" से भी इसी विषय के छन्द उद्धृत हैं—

कारन कारज जे जगह सहाकारी समुदाय।
रत्यादिक थाईन के कवित्तन में आइ ॥५॥
ते विभाव अनुभाव अरू हैं विभचारी भाव।
प्रगटीन थाई सहित ही आनंद के भरि पाव ॥६॥
ताही सों रस कहत है जो उपजें इहि भाँति।
कविवर बरनै ग्रन्थ में अति ही बाढ़ै कांति ॥७॥[1]

खोज रिपोर्ट में यह संभावना व्यक्त की गई है कि काव्य रस के रचयिता जयपुर के महाराजा जयसिंह द्वितीय हैं, जिनका शासनकाल संवत् १७५६ से १८०० वि० तक था। यहाँ प्रश्न उठता है कि सुदूर राजस्थान में रचित इस ग्रन्थ में हिन्दी के इन दो कवियों के छन्द क्यों उद्धृत हुए? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जयगोविन्द वाजपेयी या तो जयपुर के राजा जयसिंह के आश्रय में रहे या फिर उन्होंने वहाँ की यात्रा की और वहाँ के राजा से भेंट की। निश्चय ही वे अपने साथ अपने पिता की कृति भी ले गये होंगे। इस प्रकार "कवि सर्वस्व" और "रस रत्नावली" से राजा जयसिंह परिचित हुए होंगे और उनसे प्रभावित होकर इन रचनाओं के छन्दों को अपनी रचना में स्थान दिया होगा। इस तथ्य से भी इस बात की पुष्टि होती है कि "रस रत्नावली" के रचयिता मण्डन ही जयगोविन्द वाजपेयी के पिता थे।

४. जयगोविन्द वाजपेयी कुमारमणि शास्त्री के काव्यगुरु थे। कुमारमणि रीतिकाल के अच्छे आचार्य-कवियों में हैं। उन्होंने भी अपनी रचनाओं में जयगोविन्द वाजपेयी को मण्डन का पुत्र कहा है। "रसिक रंजन" में कवि ने अपने गुरु का स्मरण इन शब्दों में किया है—

१. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सत्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, संख्या—७४

मण्डन तनूजमनुजं जयगोविन्दस्य वन्द्य गुण वृन्दम्
श्रीमन्तं पुरुषोत्तममिव गुरु पुरुषोत्तमं वन्दे।[1]

"रसिक रसाल" नामक काव्यग्रन्थ में कुमारमणि ने इसी विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

गुर-गुरुसम मंडन-तनय बुध जयगोबिंद ध्याइ।
कवित-रीति गुरु-पद परसि अरु पुरुषोत्तम पाइ ॥[2]

उक्त दोनों छन्दों पर विचार करते हुए "रसिक रसाल' के सम्पादक लिखते हैं—"कवि कुमारमणि के हिन्दी-भाषा-शास्त्र के पं० जयगोविन्द वाजपेयी और संस्कृत साहित्य के गुरु उनके लघु भ्राता पं० पुरुषोत्तम वाजपेयी थे। कवि मण्डन जी तथा उनके उक्त दोनों पुत्र हिन्दी एवं संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित और कवि हुए हैं।[3]

इन पंक्तियों से स्पष्ट ध्वनि निकल रही है कि जयगोविन्द के पिता मण्डन हिन्दी के अच्छे कवि और संस्कृत के पण्डित थे। हिन्दी में सर्वाधिक प्रसिद्ध जैतपुर निवासी मण्डन ही हैं। तथा उन्हें संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान था। "रस रत्नावली" नामक लक्षण ग्रन्थ के शास्त्रीय निरूपण से उनके संस्कृत सम्बन्धी ज्ञान का पता चल जाता है। इससे भी सिद्ध होता है कि जयगोविन्द वाजपेयी के पिता यही मण्डन थे।"

"मिश्र" और "वाजपेयी" का रहस्य :—

हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहास ग्रन्थों में मण्डन को "मिश्र" कहा गया है जब कि ऊपर वर्णित जयगोविन्द ने स्वयं अपने को "वाजपेयी" लिखा है। यहाँ स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि मिश्र और वाजपेयी में पिता-पुत्र सम्बन्ध कैसा? पिता मिश्र हो और वाजपेयी यह सम्भव नहीं। डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने अपने शोध प्रबन्ध में खोज रिपोर्ट के आधार पर मण्डन और जयगोविन्द को पिता-पुत्र स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने भी इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। एक ओर तो उन्होंने मण्डन को "मिश्र" लिखा है और जयगोविन्द को

१. रसिक रसाल-कुमारमणि शास्त्री, सम्पादक-कण्ठमणि शास्त्री, भूमिका भाग, पृष्ठ ५, श्री विद्या विभाग काँकरोली से सं० १९९४ वि० में प्रकाशित।
२. रसिक रसाल, पृष्ठ २, छन्द—३।
३. रसिक रसाल, भूमिका भाग, पृष्ठ—५

"वाजपेयी" तथा दूसरी ओर दोनों को पिता-पुत्र भी कहते हैं।[1] इस सम्बन्ध में हमने विस्तृत खोज-बीन की है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इनका आस्पद "वाजपेयी" ही था। भ्रमवश इतिहासकारों ने मण्डन को "मिश्र" मान लिया है।

मण्डन के आस्पद "मिश्र" का उल्लेख सर्वप्रथम मिश्र बन्धुओं ने अपने "विनोद" में किया है।[2] उनके पूर्व के लेखकों-तासी, शिवसिंह और ग्रियर्सन आदि ने मण्डन के आस्पद का उल्लेख नहीं किया। केवल "मण्डन" शीर्षक से उनका परिचय दिया है। मिश्र बन्धुओं ने अपने इतिहास में "पूरा नाम-मणिमंडन मिश्र उपनाम मंडन" इस शीर्षक से उनका परिचय दिया और तभी से उनके बाद के कुछ इतिहासकार उन्हें "मिश्र" लिखते रहे हैं। वस्तुतः मिश्रबन्धुओं ने भ्रमवशात् मण्डन के विषय में इस प्रकार की बात लिखी है। काशी-नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट १९०६/२९१ में "पुरन्दर माया" नामक एक ग्रन्थ का विवरण दिया गया है जिसके रचयिता मणिमण्डन मिश्र लिखे हुए हैं। मिश्रबन्धुओं ने पुरन्दर माया के रचयिता मणिमण्डन मिश्र और मण्डन दोनों को एक समझ लिया है। कदाचित् ऐसा दोनों नामों में "मण्डन" शब्द-साम्य के कारण हुआ है। इस प्रकार मिश्रबन्धुओं ने मणिमण्डन मिश्र और मण्डन को अभिन्न मानते हुए "पुरन्दर माया" नामक रचना उनकी ग्रन्थ सूची में सम्मिलित कर दी, जब कि ऐसा है नहीं। वस्तुतः मण्डन और मणिमण्डन मिश्र दो भिन्न-भिन्न कवि हैं। ऐसा मानने के पीछे पर्याप्त आधार है—

१. हिन्दी के प्राचीन काव्य संग्रहों में कहीं पर मण्डन को मणिमण्डन मिश्र नहीं लिखा गया है।

२. स्वयं मण्डन ने अपनी रचनाओं में इस बात का कोई संकेत नहीं किया कि उनका पूरा नाम मणिमण्डन था और न ही अपने आस्पद का कहीं कोई उल्लेख किया है।

३. सभा की खोज रिपोर्टों में मण्डन के जितने भी ग्रन्थ मिले हैं उनसे भी यह पुष्ट नहीं होता कि उनका पूरा नाम मणिमण्डन था। जब कि खोज रिपोर्ट १९०६/२९१ में प्राप्त पुरन्दरमाया के रचयिता का नाम स्पष्टतः मणिमण्डन मिश्र लिखा हुआ है।

४. खोज रिपोर्ट में स्पष्ट लिखा हुआ है कि पुरन्दर माया के रचयिता मणिमण्डन मिश्र के आश्रय दाता गौड़ क्षत्रिय राजा केशरी सिंह थे। जब कि मण्डन की प्राप्त रचनाओं में जहाँ मंगदराय, अब्दुर्रहीम खानखाना, दाराब खाँ आदि नाम मिलते हैं वहाँ केशरी सिंह का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इससे भी दोनों कवियों की भिन्नता सिद्ध होती है।

५. जैसा कि "पुरन्दर माया" शीर्षक से स्पष्ट होता है यह कोई इन्द्रजाल सम्बन्धी ग्रन्थ होगा। मण्डन एक उच्च कोटि के सरस कवि हैं। "रस रत्नावली" में उनका आचार्यत्व भी उच्चकोटि का सिद्ध होता है। उनकी अन्य रचनाएँ भी उन्हें एक सरस और भावुक कवि सिद्ध करती हैं। ऐसी स्थिति में मण्डन ने "पुरन्दर माया" जैसा इन्द्रजाल सम्बन्धी ग्रन्थ रचा होगा इसकी संभावना कम ही है।

६. मिश्र बन्धुओं ने पुरन्दर माया का रचना काल न जाने किस आधार पर १७१६ वि० लिखा है। खोज रिपोर्ट में उसके रचना काल का उल्लेख नहीं है, केवल लिपि काल सन् १८९० ई० दिया गया है, सं० १७१६ वि० तो शिवसिंह द्वारा दिया गया मण्डन का उपस्थिति काल है।

७. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास से पूर्व "मिश्रबन्धु" विनोद और सभा की खोज रिपोर्ट दोनों ही हिन्दी साहित्य-संसार में आ चुके थे। किन्तु शुक्ल जी ने अपने इतिहास में न तो मण्डन को मणिमण्डन मिश्र लिखा और न ही पुरन्दर माया को उनकी रचनाओं में सम्मिलित किया। इससे स्पष्ट है कि शुक्ल जी मण्डन और मणिमण्डन मिश्र को भिन्न-भिन्न मानते हैं तथा पुरन्दर माया को मण्डन की रचना नहीं मानते।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मण्डन और मणिमण्डन मिश्र दो भिन्न-भिन्न कवि हैं, मिश्र बन्धुओं ने भ्रमवश दोनों को एक मान लिया है। यद्यपि मण्डन ने स्वयं कहीं अपने आस्पद का संकेत नहीं किया, किन्तु इतना निश्चय हो जाता है कि वे "मिश्र" नहीं थे। चूंकि उनके पुत्र ने स्वयं को "वाजपेयी" कहा है इस लिए मण्डन भी वाजपेयी थे, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध हो जाता है कि जयगोविन्द वाजपेयी कवि मण्डन के पुत्र हैं। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है जयगोविन्द के जीवन सम्बन्ध में

१. बुन्देलखण्ड का मध्ययुगीन काव्य : एक ऐतिहासिक अनुशीलन—डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृष्ठ—५०८ और ८११ (टंकित शोध प्रबन्ध)

२. मिश्रबन्धु विनोद, मिश्रबन्धु, खण्ड १-२, पृष्ठ २९६, नवीन संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, सन् १९७२ ई०।

इतिहास ग्रन्थों या अन्य साक्ष्यों से कोई जानकारी नहीं मिलती। हमें उनकी कोई रचना भी देखने को नहीं मिल सकी। संभव है उनकी रचनाओं से इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश पड़ सके। ऐसी स्थिति में उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ ठीक-ठीक कहना असम्भव सा है। फिर भी छानबीन करने से जो सामग्री उपलब्ध हो सकी है उसके आधार पर हम कवि के जीवन संबंधी कुछ प्रमुख पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

समय :—

"कवि सर्वस्व" नामक जिस ग्रन्थ का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में आया है उसकी पुष्पिका में इसका रचना काल उल्लिखित नहीं है केवल लिपि काल दिया गया है। संवत् १७६५ वि०। (पुष्पिका हम पीछे उद्धृत कर आये हैं) इससे सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि ग्रन्थ की रचना इससे पूर्व कभी हुई होगी। "हिन्दी-रीतिकविता के परिप्रेक्ष्य में कवि मण्डन का अध्ययन" नामक अपने शोध-प्रबन्ध में हमने विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर मण्डन का समय संवत् १६४०-१७२० वि० निर्धारित किया है। कुमारमणि शास्त्री-जो जयगोविन्द के शिष्य थे—का जन्म संवत् १७२०-२५ के आसपास माना जाता है और इस प्रकार उनका रचना काल संवत् १७५० के बाद ही मानना चाहिए। उनके "रसिक रंजन" और "रसिक रसाल" नामक ग्रन्थों का रचना काल क्रमशः संवत् १७६१ और १७७६ है।[1] इससे इतना सिद्ध हो जाता है कि संवत् १७५० वि० तक जयगोविन्द प्रौढ़ावस्था प्राप्त कर चुके होंगे। जैसा कि पहले कहा गया है, जयगोविन्द जयपुर के राजा जयसिंह द्वितीय के सम्पर्क में रहे हैं। उनका शासन काल संवत् १७५६ से १८०० वि० था[2] यानि १७५६ के बाद ही कभी कवि उक्त राज जय सिंह के संपर्क में आया होगा। इससे यह तो स्पष्ट है कि १७५६ तक कवि जीवित अवश्य था।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जयगोविन्द का जन्म सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में माना जा सकता है। उनका रचना काल अट्ठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित होता है। कवि की मृत्यु संवत् १७५६ के पश्चात् ही कभी हुई होगी।

---

१. रसिक रसाल, भूमिका भाग, पृष्ठ—४

२. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सत्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, संख्या – ७१ परिचय खण्ड।

स्थान :—

जयगोविन्द वाजपेयी के पिता कवि मण्डन को जैतपुर (बुन्देलखण्ड) निवासी कहा जाता है। वैसे उस समय कवि लोग सारा जीवन किसी एक ही स्थान पर रहकर व्यतीत नहीं करते थे। वे विभिन्न राजदरबारों में आते-जाते रहते थे। उनके शिष्य कुमारमणि शास्त्री का स्थायी निवास स्थान सागर जिले का "गढ़ पहरा" नामक ग्राम कहा जाता है।[1] कवि सर्वस्व की जिस प्रति का खोज रिपोर्ट में विवरण आया है, वह प्रति "गढ़ पहरा" में ही प्रतिलिपित है। अतः यह कहा जा सकता है कि कवि का सम्बन्ध "गढ़ पहरा" से अवश्य रहा होगा। किन्तु उनका स्थायी निवास कहाँ था, यथोचित सामग्री के अभाव में यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। कुल मिलाकर कवि का सम्बन्ध बुन्देल भूमि से अवश्य है।

गोत्र व जाति :—

"रसिक रसाल" के सम्पादक ने जयगोविन्द के लघुभ्राता पुरुषोत्तम जी को भारद्वाज गोत्री कहा है।[2] इस प्रकार जयगोविन्द भारद्वाज गोत्री थे। उनका आस्पद "वाजपेयी" था, यह उनके ग्रन्थ की पुष्पिका से स्पष्ट है। रसिक रसाल के सम्पादक ने जयगोविन्द वाजपेयी को "आंध्र जातीय" कहा है।[3] इस प्रकार वे भट्ट ब्राह्मण थे। इसकी पुष्टि एक और साक्ष्य से भी हो जाती है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के ग्रन्थालय में "कवित्त संग्रह" नामक एक हस्तलेख है।[4] इस ग्रन्थ में अन्य कवियों के साथ जयगोविन्द वाजपेयी के कुछ छन्द संग्रहीत हुए हैं। जहाँ-जहाँ भी कवि के छन्द आये हैं, उनसे पूर्व कवि का नाम इस प्रकार लिखा हुआ है—"कवि जयगोविन्द भट्ट वाजपेयी" इससे भी सिद्ध होता है कि वे भट्ट ब्राह्मण थे। इस प्रकार जयगोविन्द, "वाजपेयी" उपनामक "भारद्वाज" गोत्री "भट्ट" ब्राह्मण थे।

---

१. रसिक रसाल-भूमिका भाग, पृष्ठ—१३

२. वही , पृष्ठ—५

३. वही , पृष्ठ—१८

४. कवित्त संग्रह (हस्तलिखित), ग्रन्थ संख्या-३-१२/२१७१, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

वंश :—

प्रस्तुत कवि के पिता कवि मण्डन थे। इस सम्बन्ध में विस्तार से लिखा जा चुका है। कि कुमारमणि शास्त्री की रचनाओं से इनके लघुभ्राता पं० पुरुषोत्तम वाजपेयी का पता चलता है, इस पर भी विचार किया जा चुका है। इसके अति-रिक्त कोई और जानकारी इस सम्बन्ध में नहीं मिलती।

कृतियाँ :—

"रसिक रसाल" के सम्पादक कण्ठमणि शास्त्री विशारद ने जयगोविन्द वाजपेयी कृत तीन रचनाओं का उल्लेख किया है—

१. कविकल्पद्रुम (संस्कृत, हिन्दी)
२. कविसर्वस्व (हिन्दी)
३. रसकौस्तुभ (हिन्दी)

अनेक प्रयासों से बावजूद हमें एक भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका। "कविसर्वस्व" नामक ग्रन्थ सभा की खोज में मिल चुका है। खोज रिपोर्ट १९३८/७३ में इसका विवरण है। खोज रिपोर्ट में विकृत प्रति का प्राप्ति स्थान श्री देवकी नन्दनाचार्य पुस्तकालय, श्री गोकुल चन्द्रमा जी का मन्दिर, कामवन, रियासत भरतपुर है। हमने उक्त प्रति की जानकारी हेतु इस पते पर पत्र व्यवहार किया किन्तु "पत्र लेने से इन्कार" इस टिप्पणी के साथ हमारा पत्र वापस लौट आया। इस प्रकार इस रचना के सम्बन्ध में भी कोई जानकारी नहीं मिल सकी। खोज रिपोर्ट के अनुसार "कवि सर्वस्व" लक्षण ग्रन्थ है। इसके अन्तर्गत रस, नायिका-भेद, अलंकार, काव्य-दोष गुण आदि विषयों का उत्तमता से वर्णन किया गया है। ग्रन्थ की विशेषता यह है कि पद्य में दिए गए लक्षण और उदाहरण गद्य में भी भली-भाँति समझाकर स्पष्ट कर दिए गये हैं।

जयगोविन्द वाजपेयी एक सरस और भावुक कवि है। भाव पक्ष की दृष्टि से उनकी रचना मार्मिक हृदयस्पर्शी है। कुछ उदाहरण देकर हम उनकी काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। कृष्ण के मथुरा गमन से गोपियाँ विरहाग्नि में जल रही हैं। इधर उद्धव गोपियों को समझाने-बुझाने के लिए कृष्ण का पत्र लेकर ब्रज में आते हैं। वैसे तो इस विषय में हिन्दी साहित्य में प्रभूत परिमाण में रचनाएं की गई हैं। रत्नाकर का "उद्धव शतक" इस विषय की एक उत्कृष्ट रचना मानी जाती है, जिसमें गोपियों की वाग्दिग्धता का अच्छा प्रस्फुटन

हुआ है। जयगोविन्द वाजपेयी का निम्नलिखित छन्द मार्मिकता और हृदयस्पर्शि-ता की दृष्टि से बेजोड़ है।—

कागज लपेटि ल्याए बातन को नद ऊधो
  खोलत हीं फैलि गयो सुधि कों हरतु है।
प्रथम मिलाप सुखतेई जल जंतु भए
  सुधि आएँ चतुर हीं हियरा हरतु है।
अरथ गंभीरता में बूड़ि-बूड़ि उठे जीय
  फेंन सो धीरज आली ताहि को धरतु है।
पतिया प्रवाह माँझ आखर भँवर मानो
  एक ते निकसि मन एक में परतु है।[1]

अब एक दूसरा छन्द देखिए, जिसमें नायिका की विरह दशा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन हुआ है। नायिका प्रियतम को पत्र लिखने का प्रयास करती है, किन्तु ज्यों ही वह पत्र लिखने के लिए लेखनी में मसि भरती है अर्थात् मसिपात्र में लेखनी डुबोती है, त्यों ही आँखें भर जाती हैं और पत्र लिखना कठिन हो जाता है—

लाखनि संदेसे लाख-लाख अभिलाखनि के
  हिय में बढ़त जात सुधि के करत ही।
कागद गिरत कहूँ-कहूँ को चलत हाथ
  मन कहूँ मदन के लागत सरत ही।
बिकल ह्वै रहति हौं काहू सों कहति नाहिं
  जहाँ-तहाँ विरह आगी देखिए बरत ही।
पतिया को लिखिवो कठिन भयो प्रान प्यारे
  अखियाँ भरति आवें लेखनि भरत ही।[2]

आलोच्य कवि का काव्य केवल भाव पक्ष की दृष्टि से उच्च कोटि का हो, ऐसी बात नहीं है। सही बात तो यह है कि एक ओर जहाँ उनका काव्य भावों

---

१. कवित्त संग्रह (हस्तलिखित), हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, ग्रन्थ संख्या—३-११/२९७१, पत्र संख्या—६३।

२. कवित्त संग्रह (हस्तलिखित), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, ग्रन्थ संख्या—३-१२/२९७१, पत्र संख्या—६३।

की दृष्टि से हृदयस्पर्शी बन पड़ा है, वहीं कला पक्ष की दृष्टि से भी आकर्षक और प्रभावशाली है। जयगोविन्द वाजपेयी एक कुशल शब्द-शिल्पी हैं। शब्द-प्रयोग की दृष्टि से वे विशेष सजग दिखाई पड़ते हैं। चुने हुए शब्दों के प्रयोग से निम्न-लिखित छन्द में एक विशेष प्रवाह और ध्वन्यात्मकता आ गई है, जो वर्णन को प्रभावशाली बनाने में सहायक है। इस छन्द में कवि गज का वर्णन कर रहा है—

करि करि दान करवर ते उदोत चन्द
बाढे दरबर जे उछाह भर-भर तें।
घर-घर कबिन केते नवल कविमनि
धर-धर बरसत नीर मद कर तें।
भरि-भरि सुंडन ऊरध उडगनन कों
फर-फर छोड़त है यों उछाह भरतें।
मानो गाड़ि धरे हर-हर सिख नख भर-
भर छूटत भुवि चंपा विधि गिर तें।[1]

यहाँ करि-करि, भरि-भरि, भर-भर, धर-धर, फर-फर, हर-हर जैसे शब्दों के प्रयोग से पूरे छन्द में एक विशेष लय और ध्वन्यात्मकता आ गई है, जो वर्णन को मूर्त रूप देने में सहायक है। साथ ही अंतिम पंक्ति की उत्प्रेक्षा भी सुन्दर बन पड़ी है।

इसी प्रकार निम्नलिखित छन्द में यमक अलंकार का एक सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है—

नबल बिहारी प्रीति चित तें तिहारी क्यों हूँ
टरिहै न टारी सोई टारो जिनि टारी है।
ब्रज तोन जैहै ब्रजनाथ जू की जै है अरू
भूमि तोबहै है को कहै है जु उदारी है।
हिन्दू सब आए आय-आय सिर नाइ अबै
तुरक नवाए अब उनहूँ की बारी है।
मूरख अजान कहैं मथुरा उजारी कान्ह
मथुरा उजारी नाहि मथुरा उजारी है॥[2]

---

१. वही , पत्र संख्या—५४।

२. कवित्त संग्रह (हस्तलिखित), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ग्रन्थ संख्या—३-१२/२९७१, पत्र संख्या—६२

यहाँ तीसरे चरण में आए प्रथम "जैहै" का अर्थ जाना, गमन करना है, तथा द्वितीय "जै है" का सम्बन्ध "जय" से है। इसी प्रकार अन्तिम चरण में आए प्रथम "उजारी" का अर्थ "उजाड़ना" है जबकि द्वितीय "उजारी" शब्द प्रकाश से सम्बद्ध है।

कवि ने उक्ति-वैचित्र्य के द्वारा कथ्य को प्रभावशाली बनाया है। एक छन्द देखिए—

सरद निसा में निसानाथ की उज्यारी साथ
जाकें रम्यों रसिक अनंद तुम दैबे कों।
बिछुरि के ताकों लह्यो नेक न विनोद फिर्‌यो
बस-बन ब्याकुल विषाद बिसरैबे कों।
कीजे न गरब एरे किंसुक सुमन तो में
बैठ्‌यो है न मधुप सुगंध सुख लैबे कों।
मालती के विरह निपट कल कानि ह्वै कै
आयो तोहिं समुझि दवारि जरि जैबे कों।[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जयगोविन्द वाजपेयी का काव्य भाव पक्ष तथा कला पक्ष, दोनों ही दृष्टियों से उच्चकोटि का है।

—२८०, बिड़ला छात्रावास
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी।

---

१. कवित्त संग्रह (हस्तलिखित), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, ग्रन्थ संख्या ३-१२/२९७१, पत्र संख्या—१९६

एक अदृश्य छाया

स्व० चौधरी किशोरी लाल 'लल्ला'

उसका चित्र आज मेरी आंखों से ओझल नहीं होता। न जाने कौन-सी छाया उसके जीवन पर अभिशाप बन कर मंडराती रही, जिसे उसने चैन से न रहने दिया। दस वर्ष व्यतीत होने को आये, पर लगता है कि बात कल की है।

देहरी पर पैर रखते ही उसका माथा ठनका। एक छोटा सा दुगैला, फिर आंगन और आंगन से लगा हुआ कमरा। कमरे में पुराने किस्म की दो कुर्सियां, एक पलंग, दीवार पर चीड़ के पटियों से बनी हुई रैकें, जिनमें किताबों का अम्बार, देख कर ही उसका मन व्यथित हो गया। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया था। मन में बनाये हुए घरौंदे ढह गये। कल्पना में बना हुआ हवामहल हवा में उड़ गया था। वह एक कोने में बैठती सोचती कि क्या यही मेरे स्वप्नों की तस्वीर है। मुझे याद है, तब उसने एक एनालजिन की गोली खायी थी और बिस्तर पर लेट गयी थी।

सूर्य ढलने से सांझ की आभा नभ पर फैलने लगी थी। भाभी उठो भी, तब उसकी ननदी ने कहा था। उसने उठ कर हाथ मुंह धोया, अनमने मन से शृङ्गार कर पास-पड़ोस की औरतों के बीच बैठ गयी थी। ढोलक पर थाप पड़ते ही गीत की स्वर लहरी आंगन में गूंज उठी। हास्य-व्यंग का वातावरण भी चला। सांझ ढलते ही पास-पड़ोस की आयी हुई औरतें सब अपने घरों को चली गईं। शेष रह गई थीं ननदी, सास और देवर।

सुहाग की रात नारी के लिए मधुर स्वप्न लिए होती है। जीवन भर के संजोये हुए स्वप्न आज साकार करने के लिए आतुर रहती है, लेकिन इसके लिए वह रात टीस बन गयी। एक धुला हुआ सफेद चादर, उस पर दो तकिये देख उसका मन बिलख उठा। डनलप का भारी भरकम गद्दा स्वप्न बन कर ही रह गया था। फूलों से सजी हुई सेज उसकी आंखों में ही विलीन हो गयी थी, वह भारी मन लिए पलंग पर बैठी थी वह बार-बार मन को समझाती, 'रे पगले,

एक क्लर्क से इससे अधिक और क्या आशा रखती हो। यदि अभी से हताश हो गया, तो पूरा जीवन कैसे बितायेगा? फिर मैं भी तो हूं। दोनों मिल कर सब ठीक कर लेंगे। वह इन्हीं विचारों में तब तक डूबती उतराती रही, जब तक कोई कमरे के अंदर नहीं आया। उसे किवाड़ों का खोलना, बन्द होना फिर सांकल का चढ़ना कुछ भी मालूम न हो सका।

प्रिये…मधुर सी आवाज जब उसके कान में पड़ी, वह उठी पैरों की ओर झुकी और सामने वाले ने उसे बांहों में थाम लिया। क्षण भर में ही वह सब भूल गयी। प्रियतम के गले में लता-सी झूम गयी। आंख से आंख मिली और प्रिय के अंक में समा उन्हीं में खो गयी। मन में उमड़ी हुई बदरी छट गई। दोनों में बातें होती रहीं और कब नींद ने धावा बोल दिया, वे न जान पाये।

मैं सोचता हूं कि नारी का मन कितना सहज होता है कि थोड़ा सा ही स्नेह पाकर वह उसे अपना सर्वस्व समझ बैठती है। कहां तो उसके मन में कितनी वेग से तूफान उठा था, लेकिन दो शब्दों में ही शांत हो गया। वह समा गयी थी उसकी बांहों में।

उसकी वह लज्जा से झुकी आंखें आज भी मेरी आंखों में समायी हुई है। भाभी उठो, फिर रात आयेगी। व्यंग करते हुए उसकी ननद ने कहा था और वह हड़बड़ा कर उठी, सांकल खोली और सूर्य को सिर पर देख लजा गई।

वह लेखिका थी, शांत वातावरण चाहती थी। छोटे से घर में भला ये कैसे संभव था। उस पर व्याह का घर भीड़-भाड़ में उसके सिर में अक्सर दर्द हो जाता। घर की बूढ़ी औरतें उसे सुना कर ताना देतीं—बड़े बाप की लाड़ली लड़की है। भला उसके सिर में दर्द न होगा तो क्या हम लोगों को होगा। विष का घूंट पी गुमसुम वह सुन लेती। अकेले में रोती और अपने को कोसती। वह कैसा अभागा दिन था, जिस दिन मुझे उनका प्रशस्ति पत्र मिला और अनजाने ही इन की ओर उनमुख हो गयी बिना देखे-बूझे मैंने अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार ली। फिर सोचती—भाग्य में जो कुछ लिखा होता है, वही होता है। मुझे भी इन्हीं लोगों सा ढलना चाहिए। पिछला जीवन भूल इसे स्वीकार करूं। वह इसके लिए जैसे ही तत्पर होती, कोई न कोई ऐसी चोट हृदय पर लगती कि वह तिलमिला उठती, आवेश में भर जाती, अपना सन्तुलन खो बैठती। धीरे-धीरे पति गृह से उसका मन उचाट होने लगा और एक दिन बिना बताये ही सारा सामान ले मायके चली गई। पति महोदय किसी प्रकार मना कर उसे लौटा लाये।

उसके स्वभाव में रुखापन आ गया था। बात-बात पर माँ से लड़ बैठती। पति-पत्नी में भी कटुता बढ़ गई। दोनों के लिए जीवन नर्क बन गया। पति उसे अब भी मन से चाहता था पर विवश था। एक ओर बूढ़ी मां थी, तो दूसरी ओर पत्नी। कभी-कभी मां की गोद में सिर रख कहता—"माँ, मैं क्या करूँ ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता। क्या मेरा जीवन दो पाटों के बीच ऐसा ही पिसता रहेगा।"

भाग्य ने पलटा खाया। क्लर्क से महाविद्यालय में व्याख्याता हो गया, लेकिन कटुता के बीज नष्ट न हो सके। मन में पड़ी गांठ सुलझ न सकी। इसी असंतुलित जीवन के बीच एक नन्हें मुन्ने ने जन्म लिया। अभी पांच दिन भी न बीत पाये थे कि उसने मायके जाने की हठ ठानी और जब कोई राजी न हुआ तो छठवें दिन वह दुधमुंहे बच्चे को छोड़ बिना कुछ कहे सुने मां के घर चली गयी। विधि की विडंबना, पति के ऊपर दुःख के बादल टूट पड़े। आखिर छः दिन के बच्चे को कैसे पालें। किसी तरह से बच्चा पलने लगा। इतने में ही उसने न्यायालय में बच्चे को पाने के लिए मुकदमा दायर किया। दोनों ओर से पैरवी हुई और अंत में कानून के अनुसार पांच वर्ष के लिए बच्चा उसको मिल गया। दिन व्यतीत होने लगे। असंतुलित मन के कारण मायके भी न रह सकी। एक दिन पति को पत्र मिला—"दासी के अपराधों को क्षमा करें। अनजाने में भूल से जो मुझसे कृत्य हो गया, उसके लिए मैं शर्मिन्दा हूँ। एक दिन के लिए आप यहां आइए, मुन्ना को देखिए, वह कितना शैतान हो गया है। वह पापा-पापा कह कर बाप को बुलाता है। मेरे लिए नहीं, तो उसके लिए ही आ जाइए। भूलें जीवन में सभी से होती हैं। आप तो मेरे हैं, जीवनपर्यन्त मेरे रहेंगे। आप के सिवा मेरा इस दुनिया में है ही कौन।"

पति का कोई भी उत्तर न आया और न वह गये। तब एक दिन चिलचिलाती धूप में पतिगृह के दरवाजे पर खड़ी वह किवाड़े थपथपाने लगी। दरवाजे खुले और हमेशा के लिए खुल गये।

मुन्ना के घर आ जाने से घर में आनन्द की लहर दौड़ पड़ी। खुशी से दिन व्यतीत होने लगे। मालूम ही ना पड़ता, समय कैसे निकल जाता। सुख के ये क्षण कुछ महीनों ही चले। उसके मन ने करवट ली और घर का वातावरण फिर अशान्त हो गया। झगड़े ने रौद्ररूप धारण कर लिया। उसकी एक ही रट थी कि कि माँ को अलग करो, और माँ को अलग करके ही मानी। इसी बीच एक कन्या

को उसने जन्म दिया। पति के लाख मना करने पर उसने टी० टी० करा लिया। टी० टी० में उसे एप्सिस हो गया और न जाने क्यों उसके मन का सन्तुलन बिगड़ गया। उसे अपने ही पास नहीं, सबके पास मृत्यु ही मृत्यु दिखाई पड़ने लगी। एक अनजाना भय उसके दिलोदिमाग में बैठ गया। उसके जीवन ने फिर करवट ली और अलग की हुई माँ को फिर से साथ रहने के लिए विवश कर दिया।

जहाँ उसे सास का मुंह देखना भी नागवार था, उसी सास के पास घन्टों बैठती, बातें करती और उसकी गोद में सिर रख कर—अनन्त सुख का अनुभव करती। सास मीठे शब्दों में चुटकी लेती—"बेटी दो बच्चों की माँ हो और तुम मेरी गोदी में लेटती हो। लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?" वह कहती—"माँ कहने दो ये तो दुनिया है। हाथी चलता रहता है और कुत्ते भोंकते रहते हैं। माँ मुझे इस गोद में अनन्त सुख मिलता है।" सास कभी-कभी उलहना देती—"बेटी, पहिले जब वह कभी मेरे गोद में लेटता था तो तुम व्यंग से कहती थीं—'देखो छट्टूले भैया को, मां की गोद में पड़े हैं।" वह सुन कर मुस्करा देती, फिर एक लम्बी साँस खींच कर कहती—"माँ, उन दिनों की याद न दिलाओ। मैंने तुम पर कितने अत्याचार किये, सोच कर ही आज रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उन दिनों जाने कौन सा भूत मेरे ऊपर सवार था। माँ मैं अपने वश में न थी। अच्छा हुआ, वे दिन चले गये। हे ईश्वर ! अब ये दिन मुझ से ना छीनना।' फिर छाती से लिपट कर कहती—"माँ मैंने ये कर डाला। गुड्डू को अब छोटा भैय्या कहाँ से मिलेगा। माँ, तुमको मुझ से अब कोई फिर से न छीन ले।" कहते-कहते वह हिलक-हिलक कर रोने लगती और माँ उसे बच्चे जैसा सहलाती थपकियाँ देती, अनेक प्रकार से समझा कर उसे शांत करती।

माँ, मेरी देवरानी जल्दी बुला दो—वह कहती—मेरी जैसी न बुलाना, माँ। कब बुलाओगी उसे। मेरी आँखें उसे देखने के लिए तरस रही हैं। और इसी बीच देवर जी को देखने के लिए आये। वह हालीफूली न समायी। दौड़-दौड़ कर काम किया। घर को सजाया, संवारा। दिनभर कार्य में व्यस्त रही। माँ कहती—'बेटी रहने दो, थक जाओगी, बाकी मैं कर लूंगी।' लेकिन वह न मानी और अन्त में चारपाई पर पड़ ही रही। एक दो दिन की बेहोशी तो उसे हो जाया करती थी, लेकिन इस बार की बेहोशी बढ़ गई। घरवालों को चिन्ता हुई। डाक्टर को बुलाया गया। उसने देखा और कहा—"कोई चिन्ता की बात नहीं है, कल तक होश में आ जायेगी।" लेकिन वह होश में न आई और सुबह अस्पताल में मरती

कर दिया। वहाँ पर भी डाक्टर दिलासा देते रहे, दवाइयाँ चलती रहीं। सुबह से शाम हुई, रात हुई और फिर सुबह, लेकिन तन्द्रा में कोई अंतर न आया। डाक्टर ने दूसरी दवाइयाँ बदल कर दीं, पर सारी दवाइयाँ शरीर के अन्दर पानी हो जातीं। मुख की चेष्टा बदलने लगी, साँसों का चलना थमने लगा। तुलसी, गंगाजल की दो बूंदें मुख में जाते हुये साँस एकाएक रुक गयी और हाथ की बंधी मुट्ठी खुल गयी।

————

घुल गये जो लोग जहर में

ऋषभ समैया

जो जी रहे हों अजनबी अपने ही शहर में
वो खाक चढ़ेंगे कभी गैरों की नजर में।

हो भोर गुनगुनाती रात नृत्य सी कटे
निश्चित ही बहा होगा पसीना दोपहर में।

कितनी क्षणिक है आदमी की जिन्दगी हुजूर
सागर युगों से लिख रहा हर एक लहर में।

ऐ विषबुझो सराहो उन्हें बंदगी करो
अमृत की तरह घुल गये जो लोग जहर में।

विस्तार नापना हो नदी के बहाव का
देखो कि कितना पानी है सब दूर नहर में।

हर सांस में घुली हो जिनके प्यार की महक
क्या उनको याद कीजिए हर एक पहर में।।

—सबरंग क्लाथ डिपार्टमेंटल, सागर

————

चिन्ता माहुर मीच भई

श्याम नारायण मिश्र

खैंच खैंच घरबार गिरस्ती
गर्दन हींच गई
उमरिया दलदल कीच भइ।

बाघ बियानी घाटी सौ घर
बीहड़ जैसे खेत
बड़े जतन खरयान बनाये
आसा हो गई रेत

मंडी की बोली
थरिया में जहर उलींच गई।

घोड़ चढ़े से खादी लट्ठे
ऊंट चढ़ी सी ऊन
सरदी गरमी बरसा झेले
सन्नपातिया खून

बारउ मास तोस दिन खटतन
देह दधीच भई।

छाती पै सरकारी हाकिम
थानौ पीठ सवार
पुरखौती सें लदो आ रओ
कांधन साऊकार

ब्याज और बिटिया की चिन्ता
माहुर मीच भई।

—आयुधनिर्माणी, कटनी, म० प्र०

————

यह कोई कविता नहीं है

सुरेन्द्र कुमार जैन

अय मेरे दोस्त,
यह जो मैं कविता कह रहा हूँ
यह कोई कविता नहीं है।
कल रात जो
तुम्हारे प्यार की उष्णता पाकर
दिल के समन्दर से
जो गम के बादल
अंतराकाश में घुमड़ आए थे
वे तुम्हारी स्मृति के हिमालय से
टकरा कर
नयन के रास्ते से
कागज पर बरस पड़े थे
ये वे ही तो अक्षरविन्दु हैं
जो आज मेरी अक्षय निधि बन गये हैं
और यह जो मैं कविता कह रहा हूँ
इसलिए
अय मेरे दोस्त
मैं कहता हूँ
कि यह कोई कविता नहीं है।

—सहकारी संघ, छतरपुर

मिलो तौ तनकई देर खों हतो तोऊ भौत नौनो लगो तो--

कभऊं नईं भूलनें बौ मिलन दद्दा कौ

—वीरेन्द्र शर्मा "कौशिक"

सन् १९६० की २१ मार्च को वो दिन कमंऊ नई भूलत। ऊ दिना हम सिटी बस में बैठकें नई दिल्ली के नार्थ एवेन्यू में पौंचे। बस से उतरत नई बिजुरी की चकाचौंध में हमें ऐसो लगो कै जाने हम किते आ खड़े भये। एक जंगा ६९ नं० की पट्टी लगी देखी सो उतई जा खड़े भये। तनकई देर खों खड़े भये हते कै मोरे कानन में बंसी की सी गुरीरी धुन गूंजी—"काये भैया, को आव तुम ? इतै काये आय ठाड़े ?"

बिलकुलई नेंगर आ गये एक अनजान भले मानस से अपनी बोली में जो सुनतई मोय ऐसो लगो जैसें अपनो कोनऊ सगौं-सम्बंधी आय मिल गओ अचानक ई परदेस में। उनको जो बतयवो तो मोरे हृदे में निसरी सो घोर गओ सो हमने सोऊ ठेठ बुन्देली में उनसे पूंछ धरो—"मैं तो ठहरो, भैया, परदेसी। पै तुमाई बोली सें तो मोय ऐसो लगो जैसें मैं अपने घरई में आ गओ होंव। सो अपुन तनक जो तो बता देव--का इतै हमाये दादा जी पं० बनारसीदास चतुर्वेदी नोई रात ?"

"हओ भैया, बेई तो रात इतै। काये अपुन को कां सें आवो भओ ?"

"हम तो, भैया, भौतई दूर—टीकमगढ़ से मोर आये हते। रातवारी गाड़ी से जानें हतो सो दादा जी के दरस-परस पावे खों चले आये ते इतै। का दादा जी भीतर हैं ?"

"नईं, अबै तो नेंया। पै आऊतई हुइयें बे ओ दद्दा। दद्दा खों तो जानत कै नई जानत ?"

"बा भैया ! कैसीं बातें आय करत मोसें तुम ?" अपनई ओरें दद्दा खों न चीनें तों को चीनें ? राष्ट्रकवि श्री मैथिली शरण जी गुप्त की बात कर रये न अपुन ? कैसो नौनो भाग्य है जो मोरो कै एक संगै दोऊ जनन के दरस मिल जाने अबई हाल मोय।"

"तो भैया! इतै आय तनक बैठकें सुस्ता लेव औ जौलों वे दोऊ जनें सप्रू-हाउस की सभा सें लौटकें आऊत तौलों अपुन कछु बतयाय लेबू। कछु जलपान सोऊ करलेव।"

इतनी कैकें वे तो तुरतंई मोरे सरकार में जुट गये। हमें तो ऐसो लग रओ हतो कै जैसें अपने घरै बैठे होंय। हम दोऊ जनें अबै बतयाई रये ते कै सामूं सें एक कार आऊत दिखी। इसाइरन सें हम दोऊ जनन कौ बतकाव गओ। हम जान गये कै तनक में खुसी कौ बो समै आवे बारो है जौन के लाने हम इतै तलक आये हते। कार सें दो भव्य मूरतें सादे-साफ लिवास में हम ओरन की ताईं बढ़न लगी। अब हम ठाड़े हो गये ते। वे जैसें जैसें ऐंगर आऊत जात ते हमाईं धड़कनें बढ़त जात तीं औ हम टकटकी लगायें उनें निहारत जात ते। जब वे बिलकुल नेंगरईं आ गये तो हमाई खुसी को कोनऊ ठिकानो न रओ। श्रद्धेय दद्दा और दादा जी खों एक संगै देखवे को जो हमाओ पैलो और आखिरी मौका हतो सो हमें तो ऊ बखत मौतई नोनो लग रओ तो। दोऊ जनन की चरन रज लैवे के लानें जैसेंईं दद्दा के चरनन में झुकोई हतो कै दद्दा ने हमाओ हाँथ बीचई में पकर लओ औ कान लगे—"भैया, पैलां अपुन जो तो बताव कै को आव अपुन? कां सें आये?"

मैं कछु कै पावकै ऊ के पैलईं दादा जी ने उनें बता दओ—"जे हमाये एक पुराने टीकमगढ़ी मित्र पं० पन्ना लाल शर्मा के भतीजे आंय।" इत्ती कैकें वे फिर बोले—"अपुन तनक बैठियो, मैं अबई हाजिर भओ।" जब दादा जी चले गए तो बा समै को मौन भंग करत भये दद्दा कै उठे—"नईं, भैया, बिलकुल नईं। हम तो बामनन सें कभंऊ पाँव नई पराऊत।"

"नईं, दद्दा, ऐसो कैसें हुई सकत भला। अपने संस्कारन औ शास्त्रन के अनुसार तो बड़ो-बूढ़ो हरदम पूज्ज होत। सो हमाओ जो अधिकार न छुड़ाओ अपुन।"

"सो तो अपुन को कैबो नोनो आय पै अपुन दोऊ जनन में को बड़ो औ पूज्ज है सो किये पतो?"

"वा दद्दा! खूब कई अपुन ने तो। कां अपुन औ कां मैं तुच्छ छोटो सो जीव। ग्यांन, बुद्धि, आयु सबई में अपुनई तौ बड़े औ पूज्ज हो। सो मोय अपने चरनन की रज लैवे सें वंचित न करो ई बेरां।"

इतनो कैकें मैं फिर उनकी चरन रज लैवे खों झुकों तो उनने फिर मोरे हांथ बीच में ई पकर लये औ कैन लगे—"बस,बस। ठीक है अब। पै जो तो बताओ कैसो आवो भओ हतो इतै ई दिल्ली में तुमाओ?"

"एक इण्टरव्यू हतो जीमें आओ तो। रातवारी गाड़ी से जानें तो सो दादा जी के दर्शनन के लानें इतै चलो आओ तो। कैसो नोनो हतो मोरो भाग्ग कै एकई संगें अपुन दोऊ जनन के दर्शन पा लये। अपुन दोऊ महा जनन के दर्शन एक संगै पाकें मोय तो अचानक संत कबीर को जो दोहा याद आ गओ तनक सुधार सहित—

'दद्दा दादा दोऊ खड़े काके लागों पांय।'

सो तुरतंई मोय जो लगो कै दादा सें दद्दा बड़ोओ पूज्ज होत। बस फिर का सोचने तो मोरे हांथ बढ़ गये अपुन के चरनन की रज लैवे रवों पै अपुन ने तो उनें बीचई में पकर लओ।"

"नईं, भैया! नईं, तुमाई जा बात सई नइयां। काये सें कै दद्दा यानी पितामह बड़ो औ पूज्ज होत। बड़े भैया रवों तो दादा कोऊ कोऊ आय कभंऊ कै देत पै दादा तो पिता का पिता ही है। ई सें दद्दा (पिता) सें दादा ही बड़ो हुइयै। काये, मानत जा बात कै नईं?" औ इत्ती कैकें वे मोरी तायें देखन लगे।

अब तो मोय उनकी ई बात की कोनऊ तर्कना नईं सूझ रई ती। सो भौचक्क सो मौन हो खड़ो को खड़ो रै गओ। का करतो और। तब उनईं नें मोय ई दसा सें उबारबे के लानें फिर कैवो शुरु करो—"भैया, ठीक है हम तुमाओ कैवो मानें लेत पै कबीरदास जो की आँगू की लैन दादा जी पै लागू करने परै।"

"नईं दद्दा, जो न हुइयै। बा लैन तो ऐसी जुरै इतै—'बलिहारी दादा आपनी, दद्दा दियो बताय॥'

इत्ती कात भये ई बीच दादा जी आ गये औ मोरी रच्छा ऊ बखत मौतई नोनी तरां सें हो गई। ई बीच कछू देर उन दोऊ महापुरसन खों आपस में बतयात देखत खड़ो रओ। फिर दद्दा दादा जी सें एक मोटो सो ग्रंथ लैकें कार की ताईं चलन लगे तो फिर मैं उनके चरन छूवे झुको तौ ई बेरां वे इंकार नईं कर पाये। मोरे सिर पै अपनो हांथ धरके असीस देत भये बोले—हम तो हरदम जेई मनाऊत रैं कै अपुन जां आओ सदैव सुखी रओ।"

ई के बाद वे कार में जा बैठे सो हांथ जोर उनें प्रनाम कर दादा जी के संगै उनके बंगले में लौट आओ। ऊ दिना दादा जी सें भईं बातन के बारे में फिर कभंऊ लिख हों पै दद्दा सें अचानक भओ वो मधुर मिलाप औ उनकी वा उदारता, विनम्रता, मीठी सी वा मुस्कान मोरे मन में आज तलक ऐसी गुरीरी निसरी सो

घुर रई कै कछू कात नई बनत। भौतई नौनी ओ कभऊं न भूलबेवारी हती बा छनभर की लेंट जी की याद जबै जबै आऊत तबई तबई मोरे मन पै उनको बो भव्व रूप उभरत चलो आऊत कै ऊको वर्णन शब्दन में नई कओ जा सकत। उनके बारे में उनई की कविताई सें अपनी विनम्र श्रद्धा उनके चरनन में ई तरा अरपन कर दैवे में मोय भौतऊ नौनो लाग लग रओ ई बेरां—

"बहु कल कण्ठ खगों के आश्रय, पालक या प्रतिपाल प्रणाम।
भव-भूतल को भेद भवन में, उठने वाले शाल प्रणाम॥"

—अवस्थी वकील का हाता,
१६४/२, जवाहर मार्ग,
छतरपुर, म० प्र०

———

जैसे घूरे के दिन फिरे सब के दिन फिरें

रामनाथ 'अशान्त'

एक दिन लक्खू भैया मिल गये। मिलतहूं सें पूछन लगे—काये यार ऐसे काये या सूखत जात हो कौन सी तकलीफ रहत है? अब उन्हें का बताते। आज-काल अच्छन-अच्छन की हालत पतली भई जात, फिर अपन कहां है। हमनें कई लक्खू भैया, शरीर में रोग लग जात है, तो घुन सो खोखलो कर देत है। फिर आजकल एक तकलीफ हो, तो बताई जाय। ई जमाने में काय कोई अच्छो-भलो रे सकत है। एक न एक चिकल्लस परेशानी लगी रेत है। समझई में नई आतई, मेंगाई में कोउ अपनो घर कैसे चलाये। आधी गुजर गई पै अपन जई के तई हैं।

लक्खू भैया दुनियां देखें बैठे वे काग चुप रैवे वारे हते। बड़े बुजर्गन जैसे समझान लगे "देखो भैया, मन इतनो छोटो करबे की जरूरत नइयां। अरे जब घूरे के दिन फिरत हैं, तो का अपने दिन नै फिरहैं। गोकल के घर के पास जो बो घूरो हतो, आज ऊको हाल देखो तो दंग रै जैहो। अरे काये कौन तुम्हें मालूम नइयां। ऊ घूरे पै सब घरन की राख कूरा-कचरा नोई परत हतो का। माछी भिनभिनात रेत ती। उड़-उड़ कें बो धूरा घरन में उड़त हतो। कुत्ता धमा चौकड़ी करें, सुंगरियां लोटत हतीं। और अब देखो तो शरबती ने जगा खरीद कें कैसी ऊँची बिल्डिंग तान लई कै अब जगर-मगर होत है। कोऊ कै नई सकत कै ऊते घूरो रहो।

बिड़ी जरा कें तनक फूंका लगाओ, तनक खांस के कहन लगे—अरे और लछमन सेठ को जानतइ हो १५-२० साल पैलूं का हतो। फेरी करत हते, फिर तनक सी दूकान लेके बैठ गये। कछु ऐसो मेर जमो देखतइ देखत पैसा फट परो। बिल्डिंग तन गई, मोटर आ गई। अब देखो तो सेठ कहान लगे। मजई मजा है, भैया। ऐसई दमड़ी राशन बारे की हालत कित्ती बदल गई। अब एक हो तो कहें, काय बो पंडा को लरका रामसंजीवन स्कूल में ठीक सें पढ़त नईं हतो। जब देखो, झगरा करत हतो। कैसऊ करकें कालेज में पोंच गओ। उतै हैसो नेता का बन गओ कोउ पार्टी बारन की ऊपे नजर पर गई। बस का हतो, अपनी पार्टी सें पालिका को

चुनाव लड़वा कें मेम्बर का बना दओ, फिरतो ऊ देखो बड़तइ नोंई गओ। मोपाल को मेम्बर बन गओ। अब देखो तो घर की हालत बिल्कुलई बदल गई। कोऊ खों नोकरी दिलानें, बदली करानें के लेसंस लेनें, सबके लानें जे छोटे मैया आगू रहत हैं। और फिर उनके घर में लच्छमी काये न आहै।

सुनत-सुनत अपनो धीरज टूटन लगो। कये बिना रओ न गओ, सो बोलइ परे—देखो लक्खू मैया, धंधा बारन की और ऊंचे नेतन की बात न करो। इनकी बात और है। नोकरी-पेशा बारे तो गिनी-चुनी तनखा में काम चलात हैं, पे खा खा कें ऊंचे बन सकत हैं।

लक्खू ने अपनी बिड़ी में फूंक मारी और फिर कहन लगे—मैया की बातें बहुत से ऐसे मुहकमा हैं जहां घुस भर जाव फिर दिन फिरत देर नईं लगत। तनक हुनर और समझदारी भर भओ चइये। काय मनकू के लड़का को खों नईं जानत का। थानेदार जब से बनो है, घर की हालत नोंई बदल गई। और ऊ बाबू खां को लरका जो जंगल महकमा में हतो, आज कैसे ठाट हैं। उनखों कबहूं फटो कुरता मुश्कल से नसीब हतो। और बो गनेसा सड़क के काम को छोटो साब का भओ, अब तो ऐसो चल दइया होत है। घरबारे मोटरन पै बाजार करवे जात हैं। मैया सोई में कछु नईं धरो। सबई के दिन फिरत हैं।

हमसें अब न रओ गओ तो कै परे—काय मैया मास्टरन की हालत कबऊं बदल सकत। मास्टरी करत जिन्दगी गुजर जैहै पै न तो नोनो खा पी सकें न नोनो ओढ़ पैन सकत। उनें देखो तो बाबुअन की ओरतें सौ सें नीचे की साड़ी नईं पैनतीं।

बीड़ी को आखरी फूंका मार कें फेंक दई। और फिर कहन लगे—बात तुमाई जा ठीक है। पै मैया सबई एक से नईयां। कछु मास्टरन खों भी तो देखो तो कछु न कछु जुगाड़ जमा कें अच्छी कमाई कर लेत और मजा मौज करत हैं। अब मैया अब जा तो अपनी अपनी करनी है। हमाई तो जा समझ में नईं आत के इत्तो पैसा कहां से अर्रा जात। हमें तो नईं लगत अपने दिना कबहूं फिरहै।" हमाये अनजाने पन पै तनक हंसत भये उननें कई—अरे मैया कछु किस्मत कछु करतब और आजकल भलो-बुरो को आ पूंछत। पै हम तो जा फिर कैहें कं मन छोटो करवे की जरूरत नइयां। जब घूरे के दिना फिरे तो कमऊ न कमऊं दिना सोई फिर हैं।

हमनें तो उनकी बात गांठ में बांध लई मन खों संतोष दे लओ। अब सब के लानें सोई अपनो जोई कैवो है—कै मैया ऐसई सब के दिना फिरे।

—३४०, साठिया कुआं, जबलपुर

नये चुनाव

जितेन्द्र सिंह

आज जब हम अथाई पै पौंचे, ऊ समै सब बूढ़े स्याने पंच दुखी मन सें बैठे ते। पौंच कें हमनें सबसें राम-जुहार करी, औ एक जगा ठाँड़े हो गये। हमें देखकें लल्लू कक्का नें कई—"आओ भइया, बैठो .." फिर बोले..."देखो तो भइया, का हो रओ आज के जमाने में, कैसी समइया आ गई, जौन बातें कमऊं सोचीं न तीं, बे हो रईं। का सें का घट रओ, आदमी-आदमी के खून को प्यासो बन गओ। चार दिना की जिन्दगानी में कित्तो पाप इखट्टो कर रओ जो माटी को पुतरा। का कइये भइया ....." इतनो कात-कात लल्लू कक्का को गरो भर आओ, आँखन में अंसुआ झिलमिला आये।

उनको दुःख सब जनें समजत ते, सब खाँ ऊ बात को भारी दुःख हतो। सो हमनें कई—"कक्का होनी खाँ को रोक सकत, बड़ी बलवान होत है होनी। आपुन आवै ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाय।" हमाई बात बीचइ में रोक कें परमू भैया ने कई—"हाँ भइया, होनी कोउ कें रोके नईं रुकत, जा बात सब जानत हैं, अकेले बिना सोचे समजे काम करबे को का फल होत है 'बिना बिचारे जो करै सो पाछे पछताय। काम बिगारै आपनो जग में होत हँसाय।' अब इतईं देख लेव बल्लू भैया की नाँव तो बीच धार में डुबा दई ई पापी बरदानी नें। संगै-संगै ऊके खुद को घर सोऊ बरबाद हो रओ। बल्लू भइया के बारे-बारे दो लरका औ घर-बारी बिलख रईं। घर में कोउ स्यानो है नइयां। ऊके परवार को तो अब भगवानइ मालक है।"

"हे राम" कहकें एक लम्बी उसाँसा भरकें कामता भइया बोले—"आग लगें ऐसे चुनावन में। कौन जागीर मिलनें हती। अकेले बल्लू भइया तो गाँव बारन की सेवा करबे के अरमान सें, गाँव के विकास कों। सपनो आँखन में बसा कें, चुनाव लड़े ते। येई सें गांवबारन नें उनें जिताओ तो। सत्यानास होय इ बर-दानी को, का सूझ परी इयै जौन इत्तो पाप करम करो। ई कसाई नें। हीरा से

बतुआ (बल्लू भइया) की जान लैं लई। हमाई आंखन सें तो ऊकी छब नई बात आय कैसें हँस-हँस कें बोलत तो सबसें सबके। सुख-दुःख में संगाऊ आउत तो बल्लू भइया।''

घरवा खों आंसू बहाउत भए काशी दाऊ नें कई—''भइया हमें ई बरस-निर्यां के सच्चन दैलां से साजे न दिखात ते। आनें किते-किते के चोर बदमास ऊके घरे आउत ते। गांव में दंगा कभऊँ चोरी-चकारी न होत ती, सो बरवानी की किरपा सें सब होन लगो। अब कतलें भी होन लगीं। आदमी की जान आज इत्ती सस्ती हो गई कै जे चोरबदमास दिनदहाड़े बल्लू भैया खां मार गये औ हम सब जनें कछू न कर पाये।''

काशी दाऊ की बात सुनकें मनोहर चौबेजू बोले—''का कर सकत ते भइया, बन्दूक की गोली के साम्हूं। लाठी डण्डा की लड़ाई होती, तो हमऊ दो-चार हाथ दिखाते। किस्तो बुरो काम को बरदानी नें जनता जनारदन की राय को अनादर करो औ हत्या को पाप अपने मूड़े लओ। जब जनमत खां माननेई न तो तो काये खां परधानी को चुनाव लड़ो तो। सब गांवबारे न चाउत ते तभई तो ऊकी हार भई। अकेले उनें अपनो निसाना जीते भये परधान बल्लू भैया खां बनाओ। जा हम सबके अपमान की बात आय।''

अब हमाये दिमाग में एक बात आई कै। पंचायतन को गठन औ गांव सभा के चुनाव तो गांवन के विकास के लानें, एक दूसरे के सहजोग के लानें, एक दूसरे की सुनबे समझबे के लानें होत है। दुस्मनी बढ़ाबे के लाने, पइसा खाबे के काजें औ गरीबन को खून चूसने के लाने तो गांवसभा औं पंचायतें बनाईं नईं जातीं। औ न चोर-चकारन के जमावड़े के लानें पंचायत घर होत आंय। अकेले जे सब बातें धड़ाके सें हो रईं। तरे सें ऊपर लें। लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट औ थाना-अदालत आज गांवन की नीयत काये बन गई? पंचायतें औ पंच को अपनो सरूप बिसरा चुके? कै गांवबारन की भावना बदल गईं, जौन जा सब हो रओ गांवन-गांवन।'

सब जनन खां चुप्प देख कें सरपंच किशोरी मौंते ने कई—''भइया ऐसो पंचायत, परधानी औ चुनाव हमें न चइये। सुनो है बरदानी की जमानत हो गई औ बा जेहल से छूट कें गांव आ रओ। ऊ मुकदमा के जौन गवाह हैं, उनें बदल-बाबे के काजें बो पूरी कोसित करहें। ऐसे समै हमाओ का करतब होत है? सबसें पैलां बल्लू भइया की खेती-पाती को इंतजाम हम सब खां मिलकें करो चाइये। दूसरी बात बरदानी को [गांव औ बिरादरी सें व्योहार बंद कर दओ

चाइये। अब बो हमाओ सबको दुस्मन आय। बरदानी खां सजा दिवाबे की पूरी कोसिस पंचायत के सब पंचन खां औ गांवबारन खां करो चाइये। का राय है ई बिसै में सब पंचन की।''

किसोरी मौंते की बातें सुनकें अथाई पै बैठे सब पंचन नें एक सुर में राय जाहिर करी कै—''मौंते ठीक कै रये। ऐसे दुस्ट आदमी की गांव में कछू जरूरत नइयां। आज सें बरदानी को बहिस्कार सब जनें करहैं। एकता में सक्ती होत है, औ पंच परमेसुर को सरूप होत है। सो जौनें सब गांवबारन के मत को अनादर करो, ऐसे आदमी सें गांवबारन को कछू रिस्तो नइयां। ऐसे हत्यारे खां सजा जरूर मिलो चाइये।''

जब जो बतकाव पूरो भओ औ जब लौं पंचन को निर्नय भओ तब लौं-बैठे-बैठे बिलात देर हो गई ती। अथाई सें सब जनें जाबे की तैयारी करन लगे तो हमऊ भारी मन सें सोचत चले आये कै पंचायत के औ गांव सभा के नये चुनावन में का सें का हो रओ। अबै लौं किते बल्लू भैया जैसे सीदे-सांचे आदमियन की जानें चलीं गईं? औ अबै किते जनें भगवान खां प्यारे हो जैहैं, कछू कओ नईं जा सकत। ईसें साजो तो कै जे चुनावई न होते। का मिलो इन चुनावन में। गांवन-गांवन बिरोध बढ़ गओ, घर-घर दुस्मनी फैल रई। गांव, घर बरबाद हो रये। चुनावन की आगी मे सब कछू जर कें खाक हो गओ। का करनें ऐसे चुनावन औ ऐसे पदन को ·······।''

—कांति-निकेतन, ग्योंड़ो, जि० हमीरपुर (उ० प्र०)

—०—

आल्हा और स्वांग / बुन्देली लोक शिविर

कपिल तिवारी

कलाओं के क्षेत्र में बराबर कुछ अर्से से यह महसूस किया जा रहा है कि नागर और शास्त्रीय कला को अपनी अंतर्वस्तु और सार्थकता एक बार पुनः अर्जित करने और उसे प्रासंगिक बनाने के लिए अपने लोक आधार की ओर वापिस जाना अपरिहार्य है। उसे नये सिरे से लोक जीवन की जीवन्त धारा से अपने को जोड़कर वस्तु और रूप की नयी नियोजना प्राप्त करनी होगी। जाहिर है कि ऐसे वक्त में लोक की परम्परागत कलाएँ और साहित्य अपने दायित्व के प्रति विशेष सचेत हों।

आदिवासी और लोककलाओं के सम्मान, विस्तार और प्रोत्साहन तथा संरक्षण के लिए नवगठित संस्था 'मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद' इस और दायित्व को पूरा कर रही है। इस उद्देश्य के तहत बुन्देल खण्ड अंचल की कलात्मक और साहित्यिक उपलब्धियों को समझने और सम्मान देने के लिए राहतगढ़ (सागर) में 'आल्हा' और "स्वांग" पर एक शिविर का आयोजन किया गया।

बुन्देलखण्ड आर्थिक-भौतिक रूप से अपेक्षाकृत एक पिछड़ा हुआ क्षेत्र है, किन्तु अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक भूमिका और सांस्कृतिक गतिशीलता के लिए वह सदैव बहुत सक्रिय और उर्वर क्षेत्र रहा है। बुन्देली एक सक्षम भाषा है जिसमें लोक काव्य की गौरवमयी सुदीर्घ परम्परा है। "आल्हा खण्ड" इसका जीवन्त दस्तावेज है, जो शताब्दियों तक लोक कण्ठ में जीवित रहकर बुन्देली अंचल और उसके बाहर भी करोड़ों लोगों का लोकरंजन करता आया है, वहीं दूसरी ओर बुन्देली लोकनाट्य "स्वांग" अपनी विशिष्ट लोकशैली में लोगों की रंगमंच सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहा है। परम्परागत लोक सृजनशीलता से जुड़ने, उसे समझने तथा उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के उद्देश्य से आदिवासी लोक कला परिषद् ने अपने प्रथम लोक शिविर में लोक काव्य रूप—आल्हा और लोक नाट्य रूप "स्वांग" पर केन्द्रित इस आयोजन में बुन्देली अंचल के पैंतालिस

कलाकारों को वह मंच प्रदान किया, जिसकी जरूरत एक अर्से से लोक कला को इस क्षेत्र में थी।

आयोजन के दो पक्ष थे—एक तो आल्हा गायन और स्वांग प्रदर्शन तथा दूसरा आल्हा और स्वांग पर आलेख वाचन और चर्चा। पहिले दिन यानी २१ जून को कार्यक्रम आल्हा पर केन्द्रित था—सुबह आल्हा पर आलेख और चर्चा तथा रात्रि आल्हा गायन। कोशिश की गई थी कि आलेखों में जिस ढंग से विषय प्रतिपादन किया जाये और इस पर बहस का जो रवैया हो उसमें अकादमिक भारीपन न आ पाये वरन् इन कलाओं से सृजनात्मक पक्ष पर बातचीत केन्द्रित की जाये।

आल्हा पर तीन आलेख थे—श्री माधव शुक्ल "मनोज", श्री दुर्गेश दीक्षित और श्री शिवकुमार श्रीवास्तव के। श्री मनोज ने "लोकगीतों में आल्हा" शीर्षक से अपना आलेख पढ़ा। उनका मत था—"बुंदेलखंडी लोकगीतों का आरंभ बारहवीं शताब्दी से होता है, सुप्रसिद्ध लोक काव्य आल्हा उसी समय लिखा गया। बघेली और बुंदेली संस्कृति का उक्त काव्य में अटूट संबंध है। उन्होंने आगे कहा "उस समय के विद्वान पंडितों ने आल्हा को जन साधारण के गाने की वस्तु समझकर उसे सुरक्षित नहीं किया, इसलिए जगनिक की शैली और ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर प्रचलित वीर गीतों की छवि लोक कंठ से मुखरित होती हुई अब तक चली आ रही है। जिन गीतों का संग्रह आल्हाखंड के नाम से प्रचलित है, उसको पहिले-पहल मि. चार्ल्सइलियट ने संकलित कर छपवाया था।

डा० दुर्गेश दीक्षित किन्ही अपरिहार्य कारणों से उपस्थित नहीं हो सके। उनके आलेख का वाचन किया कपिल तिवारी ने। उनकी मुख्य स्थापना आल्हा-खण्ड प्रामाणिकता, ऐतिहासिकता और भाषा के संबंध में थी। उन्होंने व्यक्त किया कि "भले ही ग्रंथ में अतिरंजित वर्णन हैं किन्तु वे असत्य नहीं, अतिशयोक्ति हैं। ग्रंथ का रचना काल एवं ग्रंथ की भाषा के संबंध में मतभेद है। कुछ विद्वान इस ग्रंथ को ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी का और कुछ सोलहवीं सदी को रचना मानते हैं। इसी तरह भाषा के मामले में भी मतभेद है। किसी ने ग्रंथ को भाषा को डिंगल कहा तो किसी ने पिंगल। किन्तु यह तय है कि इस ग्रंथ की भाषा पश्चिमी हिन्दी है। उसमें ब्रज, बुंदेली और खड़ी बोली का मिश्रण है। वैसे आल्हा ब्रज, राजस्थान, मालवा और बुंदेलखंड में प्राप्त होता है किन्तु हर क्षेत्र की आल्हा की भाषा में उस जनपद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।"

श्री शिवकुमार मधुर ने इस लोककाव्य को एक नयी दृष्टि से देखा। छोटी जाति के लोगों या सर्वहारा की भूमिका से उन्होंने कहा " आल्हा खण्ड मानव की दो मूल सहजात प्रवृत्तियों-श्रृंगार और वीर " को उसकी निकटता में अभि-व्यक्ति देता है। इसके लोकधर्मी और कालजयी होने का कारण उस काव्य में सर्वहारा वर्ग की महत्वपूर्ण उपस्थिति है। ताला सैयद की यक्षराज और बच्छराज के समानान्तर उपस्थिति साम्प्रदायिक सद्भावना की प्रतीक है। नेगिय (तथाकथित ओछी जातियों) की लड़ाई में सहभागिता सामान्य लोगों के मन में यह बात पैदा करती है कि वह भी समाज के लिए लड़ सकते हैं। चर्चा के दौरान डा. कृष्णकुमार हूंका ने आल्हा की प्रासंगिकता और सांस्कृतिक तत्वों को स्पष्ट किया। उन्होंने बुन्देली के शुद्ध पाठ के आधार पर आल्हा की प्रामाणिक बुन्देली प्रति तैयार करने का आग्रह दुहराया। डा० बलभद्र तिवारी ने श्री मनोज के आलेख के सम्बन्ध में कहा कि आल्हा वस्तुतः बघेली और बुन्देली ग्रंथ ही नहीं है, कहीं आगे जाकर यह बैसवाड़ी कन्नोजी और यहाँ तक कि राजस्थानी तक फैला हुआ है और इसका कुछ अंग गुजराती में भी मिलता है। श्री दुर्गेश दीक्षित और श्री मनोज के आलेख के सन्दर्भ में श्री तिवारी का कहना था कि आल्हा इतिहास सम्मत है और इसकी पुष्टि अप्रत्यक्ष रूप से इलियट और डासन जैसे इतिहासकारों ने भी की है।"

गोष्ठी के अध्यक्ष श्री शिवकुमार श्रीवास्तव ने कहा कि आल्हा काव्य की रचना के समय राष्ट्रीयता की अवधारणा आधुनिक रूप में नहीं थी। पतनशील साम्राज्यवाद बहुत दुर्बल हो रहा था। आल्हा में इसका दृष्टिकोण साम्प्रदायिक सद्भावना का है जिसे हमें उजागर करना चाहिये।"

चर्चा का समापन करते हुए श्री धनंजय वर्मा ने कहा कि " आल्हा एक ऐसा लोक काव्य है जो लिखे गये शब्दों तक सीमित नहीं है, वह बोले गये शब्दों की समृद्ध वाचिक परम्परा का काव्य है। अपनी स्थानिक और समयगत सीमाओं के बावजूद कहीं न कहीं जगनिक का यह लोककाव्य अपने समय और स्थान को भी अतिक्रमित करता है। इस लिहाज से उसमें न केवल उस वक्त के बल्कि कहीं न कहीं हर वक्त के सामान्य जन की सामाजिक संघर्ष की हिस्सेदारी दिखती है। यही कारण है कि सामंती परिवेश में लिखे होने के बावजूद वह अन्य रासो वीर काव्यों से अलग है। समाज का जो दबा हुआ तबका है, उसकी भागीदारी और सक्रियता के कारण ही वह लोककाव्य है। लोक कण्ठ में बसने वाले काव्य की प्रामाणिकता लोक कंठ ही है।"

आल्हा पर इस गोष्ठी में अनेक महत्वपूर्ण सवाल उठाये गये। पहिली बार आल्हा पर एक सार्थक और गंभीर बहस का सिलसिला बना—नये दृष्टिकोण से आल्हा की प्रामाणिकता, ऐतिहासिकता और सामाजिक संदर्भ को देखने परखने की कोशिश की गई। जाहिर है कि जो ग्रंथ लगातार कई शताब्दियों तक लोक कण्ठ में जीवित रहा, उसमें अनेक परिवर्तन हुए होंगे, अनेक क्षेपक जुड़े होंगे विशुद्धतावादी दृष्टिकोण से यदि विचार किया जाय तो उसके साथ न्याय नहीं किया जा सकता।

इस दिन कार्यक्रम का दूसरा पक्ष था—आल्हा गायन का। रात्रि ८.३० बजे नौ कलाकारों द्वारा आल्हा गायन किया गया। आल्हा खण्ड में ५२ लड़ाईयों के विशद वर्णन हैं। कार्यक्रम में चूंकि एक ही लड़ाई अथवा प्रसंग का बार-बार दुहराव न हो, इसलिए प्रत्येक गायक ने आल्हाखंड की विभिन्न लड़ाइयों के एक-एक हिस्से सुनाये। आल्हा गायन की परम्परागत लोक शैली के लिए अपनी शुद्धता में कायम रखने के बावजूद प्रत्येक गायक की शैली में एक आश्चर्यजनक विविधता मौजूद थी। साधारण वेशभूषा में ठेठ किसान गायकों ने अपनी ओजपूर्ण आवाज प्रसंग के अनुकूल उतार-चढ़ाव धीमी और तेज लय में आल्हा गायन की बहुरंगी विविधता को मूर्त किया। इसमें जिन आल्हा गायकों ने और आल्हा के जिस प्रसंग को सुनाया, वे थे—श्री हर प्रसाद (सुमिरन वंदना) श्री पिपरिया वाले (मांडो की लड़ाई) श्री मिट्ठू लाल (आल्हा का ब्याह) श्री खिलान (मचला हरण) श्री उमेद (हरनाम को लुभावनों) श्री मूलचंद (आल्हा का मनौआ) श्री विशाल (मलखान का ब्याह) श्री फुंदी लाल (सिरसा की लड़ाई) श्री भरत लाल (सीहा की लड़ाई)।

दूसरे दिन अर्थात् २२ जून को यह आयोजन बुंदेली लोकनाट्य "स्वांग" पर केन्द्रित था। सुबह 'स्वांग' पर गोष्ठी और चर्चा आयोजित थी। इसके लिए चार विद्वानों के आलेख प्राप्त हुए—श्री शिवकुमार "मधुर", डा० कृष्ण कुमार हूंका, डा० बलभद्र तिवारी एवं डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त।

पहिला आलेख वाचन किया डॉ. मधुर ने। उन्होंने बुंदेली स्वांग के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए कहा—"स्वांग की सार्वदेशिक परम्परा में बुंदेल खंड के स्वांग की अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान है। स्वांग गीत नृत्य और अभिनय तीनों रूपों में अलग-अलग भी मिलता है और इनके समावेश से सम्पूर्ण रंगकर्म (टोटल थियेटर) के रूप में भी एक स्वतंत्र रंगशैली के रूप में

विकसित स्वांग का स्वरूप धार्मिक-पौराणिक कम किन्तु लौकिक श्रृंगार परक हास परिहासजन्य और व्यंगविनोदमय अधिक है। इस दृष्टि से स्वांग का स्वरूप एकांकी का है। अपनी विषय वस्तु और प्रस्तुति की दृष्टि से ये छत्तीसगढ़ के 'नाचा'' के अधिक निकट हैं।" डॉ. बलभद्र तिवारी का मत था कि इसमें जिन विषयों को उठाया जाता है, वे सामाजिक सांस्कृतिक विसंगतियों से सम्बद्ध होते हैं। स्वांग का विषय ज्ञात से ज्ञात की ओर उन्मुख होता है। स्वांग के विषय विसंगतिपूर्ण धर्मनेता, पांखडी, कंजूस सेठ, सामाजिक रूढ़ियाँ, असामाजिक प्रवृत्तियाँ अंधविश्वास, असंस्कारी मानव आदि होते हैं।" उन्होंने स्वांग को जनचेतना का संवाहक लोक नाट्य रूप सिद्ध किया।

डॉ. कृष्णकुमार हूंका ने अपने आलेख में सिद्ध करने की कोशिश की कि १६वीं सदी के प्रथम चरण से इस नाट्य रूप में श्रृंगार की प्रधानता आने लगी है जबकि पूर्व में स्वांग के मंच से वीर रस-प्रधान एवं भक्तिरस-प्रधान कथाओं पर आधारित लीलाएं खेली जाती थीं।"

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने "स्वांग" पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा "प्राचीनतम होते हुए भी उसमें बिल्कुल नयीं आधुनिकता से जुड़ने की विलक्षण क्षमता है और अभिनय के पुराने मूल तत्व अनुकृति को आज तक तल पकड़े हुए भी वह व्यंजना और अनेकार्थता की अपार क्षमता छिपाये है।" उन्होंने कहा कि मेरी समझ में रास लीला या राम लीला से भी प्राचीन 'स्वांग'' है। इसकी पुष्टि केवल इसी आधार पर हो जाती है कि स्वांग की मूल प्रवृत्ति नकल या अनुकृति है और यह आदि लोक नाट्य का मूल तत्व है।"

बुंदेली स्वांगों और अन्य जनपदों के स्वांगों की तुलना करते हुए गुप्त जी ने बुंदेली स्वांग की खास पहचान निरुपित की—"बुंदेली स्वांग अन्य जनपदों के स्वांगों से भिन्न अपनी एक खास पहचान रखने के कारण महत्व का अधिकारी है। वह ब्रज के भगत की तरह संगीत प्रधान, राजस्थान के भवाई स्वांगों और गुजरात के भवाई वेश की तरह नृत्य-प्रधान तथा हरियाणा के सांग की तरह गीति प्रधान नहीं है वरन् हिमाचल के करियाला और काश्मीर के भाँडपथर की तरह अभिनय प्रधान है। करियाला में व्यंग्यों का वह वैभव एवं वैविध्य नहीं है, जो बुंदेली स्वांगों में है और भाँडपथर के व्यंग्य अंत में आदर्श परक हो जाने पर अपनी यथार्थपरकता खो देते हैं। तात्पर्य यह है कि बुंदेली स्वांग अपनी अभिनय मूलकता और यथार्थपरक व्यंग्यात्मकता के आधार पर विशुद्ध स्वांग की प्रतिष्ठा

रखता है और इसी खास पहचान की वजह से अन्य जनपदों के स्वांग लोकनाट्यों के बीच उसका व्यक्तित्व सदैव स्मरणीय रहेगा।

श्री अलखनंदन ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा कि 'उत्तर भारतीय 'स्वांग' हो या 'नाचा' उसका मूल मैं चतुर्भाणी में देखता हूं। नाटक से नृत्य नाम की चीज अलग कर दी गई है, इसलिए अब रंगकर्मी ज्यादा विश्वास करता है लोकनाट्य का। इसमें नृत्य, गीत, संगीत और अभिनय का समन्वय है। इसे पश्चिम में "ब्रेख्त' ने अपनाया और उसे आधुनिक चेतना से सम्पृक्त करके पूरी ताकत से रचनात्मक अभिव्यक्ति का रूप दिया। नृत्य का जितना कुछ है सब अभिनय से जुड़ा है। अभिनय लोकनाट्य में भी है और शास्त्रीय नाट्य में भी। नृत्य और नाटक या अभिनय को अलग करते समय बहुत ही सतर्क होकर हमें बारीकी से देखना सोचना चाहिये। रंगकर्म ही एकमात्र कला है जिसमें सारी चीजें विश्वस्त रूप से समन्वित हुआ करती हैं।'

चर्चा में डा. मधुर, डा. हूंका, डॉ. बलभद्र तिवारी एवं डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने अनेक प्रश्न उठाये। स्वांग और नाचा में समानता, स्वांग और माच की भिन्नता, स्वांग में स्त्री पात्र की भूमिका आदि को लेकर सार्थक और महत्वपूर्ण बहस हुई।

इसी दिन रात्रि ८ बजे स्वांग की तीन मंडलियों द्वारा जिनमें ३० कलाकार शामिल थे, स्वांग प्रदर्शन किया गया। खुले हुये रंगमंच पर कोई विशेष शहरीकृत मंच सज्जा न रखकर परम्परागत और आसानी से उपलब्ध आम और केले के पत्तों से एक विशेष वातावरण तैयार किया गया था, ताकि लोकनाट्य के उपयुक्त स्वाभाविकता बनी रहे। स्वांग मंडलियां क्रमशः श्री राम सहाय पांडेय (कनेरा देव) श्री रघुवरी सिंह (सोठिया) एवं श्री तुलसी राम (वीर पुरा) की थीं। सबसे पहिले ग्राम सोठिया की मंडली द्वारा बाबा जी का स्वांग प्रदर्शित किया गया। कनेरादेव की मंडली ने घतूरेखान और चमेली जान का स्वांग पेश किया। चमेली जान की भूमिका नर्तकी कान्तिबाई निभा रही थी। इस प्रदर्शन से यह प्रामाणिक माना जा सकता है कि स्वांग के पारम्परिक मंच पर स्त्री भी अभिनय करती है और उसका प्रवेश वर्जित नहीं है।

इसके बाद क्रमशः वीरपुरा की मंडली द्वारा "शराबी का स्वांग", ग्राम सोठिया की मंडली द्वारा "ससुर-बहू" का स्वांग, कनेरादेव की मंडली द्वारा "बरेदी का ब्याह" स्वांग, वीरपुरा की मंडली द्वारा "मूरखनन्दन" का स्वांग,

ग्राम सोठिया की मंडली द्वारा "डाक्टर का स्वांग", कनेरादेव की मंडली द्वारा "पंडा का स्वांग" बीरपुरा की मंडली द्वारा "रिश्वत खोरी" का स्वांग प्रदर्शित किया गया।

इसमें अभिनय, नृत्य, गीत तीनों पक्षों का समावेश था। साधारण रूप-सज्जा, आसानी से उपलब्ध रंग-सामग्री, स्वाभाविक अभिनय और ज्वलंत तथा तीखे विषयों ने स्वांग के प्रस्तुतीकरण को विशेष तात्कालिकता दी। उसके सभी सन्दर्भ आज की भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था और व्यक्ति के दोगलेपन पर चोट करने वाले थे। कहना न होगा कि ग्रामीण अंचलों में प्रखर सामाजिक चेतना का प्रवेश हो चुका है और वे अपनी हालत के बारे में काफी जागरुक लोग हैं। प्रस्तुत किये गये स्वांग इसका जीवंत साक्ष्य थे।

—मध्य प्रदेश आदिवासी लोककला परिषद,
आर० १४, गुरु तेगबहादुर काम्पलेक्स,
टी० टी० नगर, भोपाल

———

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त : एक विचारगोष्ठी

वीरेन्द्र शर्मा

२३ जुलाई, ८२ तदनुसार श्रावण शुक्ल तृतीया सं० २०३९ को श्री मैथिलीशरण गुप्त विद्यालय में भूतपूर्व प्राचार्य, शिक्षा महाविद्यालय, छतरपुर श्री स्वामी शंकर मिश्र की अध्यक्षता में आयोजित गुप्त जयंती का विषय था—"आधुनिक संदर्भों में गुप्तजी के कृतित्व की प्रासांगिकता" इस विचार-गोष्ठी का शुभारम्भ हुआ बालमन्दिर की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत सरस्वती-वंदना से, जिसके बाद वयोवृद्ध सुकवि श्री रामनाथ गुप्त हरिदेव, ने सरस्वती वंदना में सरस काव्य-पाठ किया। संगोष्ठी का संचालन करते हुए श्री श्रीनिवास शुक्ल ने प्रोफेसर राधावल्लभ शर्मा को विचार-गोष्ठी का समारम्भ करने हेतु आमंत्रित किया। डा० शर्मा ने गुप्तजी की रचनाओं का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण ही प्रस्तुत किया। आकाशवाणी केन्द्र के सहायक निर्देशक मण्डलोई ने कहा कि 'भारत-भारती और किसान गुप्त जी की ऐसी रचनायें हैं, जो जमीन को छूती हैं, अतः वे अधिक प्रासंगिक हैं जबकि अन्य कृतियाँ ऐतिहासिक और पौराणिक होने के कारण उतनी प्रसांगिक नहीं कही जा सकतीं।' प्रोफेसर (डा०) गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया' ने गुप्तजी की विविध रचनाओं से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि गुप्त जी का काव्य आज भी प्रासंगिक है, अतः मण्डलोई जी का कथन मान्य नहीं किया जा सकता।

प्रो० (डा०) नर्मदा प्रसाद गुप्त ने अपने पूर्ववक्ता से असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि केवल कुछ पंक्तियाँ या उद्धरण देकर किसी कवि की प्रासांगिकता सिद्ध नहीं की जा सकती, वरन् इस सम्बन्ध में दो बातों पर विचार करना आवश्यक है—(१) प्रासांगिकता का माप इस बात से किया जा सकता है कि उस समय की परिस्थितियों में लिखा गया गुप्त जी का काव्य क्या आज की परिस्थि-तियों और समस्याओं को उजागर करने में सफल है ? (२) कवि की कृतियों की मूल सम्वेदना का आधार प्रासांगिकता की कसौटी बनाया जाना चाहिए। इन दोनों आधारों को लेकर यदि गुप्त जी की काव्य-कृतियों का परीक्षण किया जाय

तो हम कह सकेंगे कि वे आज भी प्रासांगिक ठहरती है। अगले वक्ता प्रोफेसर प्रमोद पण्डित की मान्यता थी कि गुप्तजी ने मानव या मानवता के लिए काव्य रचना की थी। उनकी प्रत्येक कृति में अच्छाई और बुराई का संघर्ष मिलता है और हर जगह अच्छाई के सामने बुराई पराजित हुई है। अतः जब तक अच्छाई और बुराई का संघर्ष है और जब तक मानवता जीवित है, तब तक गुप्त जी का काव्य प्रासांगिक रहेगा। जिला पुलिस अधीक्षक सुकवि श्री बनवारी लाल अटल का कथन था कि किसी कवि की प्रासांगिकता सिद्ध करने के तीन आधार होते हैं—(१) शाश्वत मूल्यों का समावेश; (२) प्रस्तुत परिस्थितियों का अभाव तथा (३) परम्परा का अनुशरण। इन आधारों की कसौटी पर श्री गुप्त जी का कृतित्व पूर्ण खरा उतरता है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि महाकवि तुलसी दास जी का क्षेत्र सीमित था, जबकि गुप्त जी का क्षेत्र व्यापक। इस कारण यह कहना अत्युक्ति न होगी कि किन्हीं-किन्हीं संदर्भों में तो गुप्त जी तुलसी से भी आगे चले गए हैं।

बुन्देलखण्ड कोकिल सुकवि श्री भैयालाल व्यास ने चर्चा को आगे बढ़ाया कि लोग तुलसी से गुप्तजी की तुलना करते हुए भूल जाते हैं कि तुलसी का क्षेत्र सीमित होने पर भी उनमें जो व्यापकता, गहराई और अनुभूति है, वह अन्यत्र नहीं है। वैसे दोनों ही महाकवि अपने-अपने युग के शक्तिपुंज थे। श्री श्रीनिवास शुक्ल ने कहा कि गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति का जो चित्र अपने काव्य में विराटता के साथ प्रस्तुत किया है, उसमें आज की समस्यायें और उनके समाधान भी अन्तर्निहित हैं। अस्तु गुप्तजी की प्रासांगिकता पर प्रश्नचिह्न लगना उचित नहीं। अन्त में अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में श्री स्वामी शंकर ने श्री गुप्तजी की "पंचवटी" नामक खण्डकाव्य कृति से उद्धरण देते हुए कहा कि गुप्त जी आधुनिक युग के ऐसे क्रांतिकारी कवि थे, जिन्होंने भक्त होते हुए भी पुरुषों द्वारा पीड़ित नारी जाति के के लिए पुरुषों द्वारा निर्मित धार्मिक बंधनों का कुशलता एवं दृढ़तापूर्वक खण्डन किया यथा पुरुष-समाज की स्वार्थपरता पर कटाक्ष करते हुए गुप्तजी कहते हैं—
"नरकृत शास्त्रों के सब बंधन हैं नारी को ही लेकर अपने लिए सभी सुविधायें पहले ही कर बैठा नर।" नारी के प्रति जो सहानुभूति व सम्वेदना गुप्तजी में है, अन्यत्र कहाँ—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

श्री गुप्तजी का नारी चित्रण अद्वितीय और अनुपम है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से नारी को विकास-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दी है।

तुलसी जयंती : गोष्ठियों की अभिनव आयोजना

सुजान

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, अग्रवाल धर्मशाला ट्रस्ट एवं सरस्वती सदन द्वारा आयोजित इन दो गोष्ठियों ने एक तरफ बुन्देलखण्ड के कविकर्म और दूसरी तरफ विचार-विश्लेषण की नयी झाँकियाँ आलोकित कीं। दरअसल कवि-सम्मेलनों के मंच अब उबाऊ हो गये हैं, इसीलिए अकादमी ने बाहर के और स्थानीय कवियों की सम्मिलित काव्यगोष्ठी की एक योजना को मूर्त रूप दिया था। अतिथि कवि थे—श्री माधव शुक्ल 'मनोज' सागर श्री सुरेश 'पराग' देवेन्द्रनगर एवं वीरेन्द्र 'निर्झर' महोबा। स्थानीय कवियों में सर्वश्री रामनाथ गुप्त 'हरिदेव', श्रीनिवास शुक्ल, भैय्यालाल व्यास, शारदा प्रसाद उदानिया, राजा संतोष सिंह, सुरेन्द्र शर्मा, आदित्य ओम, चिरंजीव अग्रवाल आदि सभी ने उनको सहयोग देने का बाना लिया था।

पहले हरिदेव जी ने सरस्वती और बुन्देलखण्ड-वन्दना के कुछ छंद सुनाकर काव्यदेवियों का आवाहन किया, फिर श्री श्रीनिवास शुक्ल की अध्यक्षता और श्री भैयालाल व्यास के संचालन में गोष्ठी का समारम्भ हुआ। व्यास जी ने कविता के नये आयामों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए कविकर्म के दायित्व पर सबका ध्यान केन्द्रित किया और निराली पृष्ठभूमि की संरचना की उसी पर आधृत व्यावहारिक योजनाओं का परिचय देते हुए अकादमी के अध्यक्ष डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने संस्था के कार्यों का एक लेखा प्रस्तुत किया। फिर शुरू हुआ काव्यपाठ का अटूट दौर।

सागर के मनोज जी ने अपनी छः-सात रचनाओं द्वारा यह स्पष्ट संकेत दे दिया कि बुन्देली कविता नये रास्ते खोज रही है। वास्तव में आधुनिक बुन्देली काव्यधारा इन कुछ वर्षों से अपने घिसेपिटे रूप के कारण शिथिल सी पड़ गयी थी, पर इधर कुछ बदलाव के आसार दिखने लगे हैं और उनमें मनोज की भागीदारी सिद्ध है। वैसे छतरपुर के राजा संतोष सिंह की नयी लयकारी और गीत-संरचना

ने भी गहरा असर डाला है, उनके गीतों में सहज शब्दों में जो स्थानीय रंग और ग्राम्य रस उभरा है, उसकी नयी दिशा को काफी लोकप्रियता मिली है।

देवेन्द्रनगर के सुरेश 'पराग' के व्यंग्यों ने तो एक बार श्रोताओं को यह कहने के लिए मजबूर कर दिया कि इस क्षेत्र की एक बड़ी कमी की पूर्ति उनकी रचनाओं से हो रही है। यह बात अलग है कि इस युवा कवि को अभी लम्बी यात्रा करनी है, पर जिस गति से वह बढ़ रहा है, वह नई संभावनाओं का पूर्वाभास दे रहा है। महोबा के वीरेन्द्र 'निर्झर' की काव्य-आख्यायिकाओं ने भी अपना एक स्थान बना लिया है। उनकी ओजमयी अनुभूतियों में नयापन इसलिए है कि उनमें बहुत गहराई में कहीं न कहीं एक वैचारिक उत्तेजना बैठी हुई है।

अपने छतरपुर के ही कवियों की उस दिन की रचनाओं में श्री शारदा प्रसाद उदानिया 'मनोज' का बदरवा कारे वाला गीत अपनी अलग शैली का है, शायद उनके अन्य गीतों की शैली से बिल्कुल भिन्न और लोकगीतात्मक शैली के बिल्कुल करीब है। राजा संतोष सिंह का दूसरा वर्षा-गीत पहले से अधिक असरदार रहा। और प्रतिष्ठित कवियों की चर्चा फिर कभी की जाएगी, लेकिन यह कहने में कोई हर्ज नहीं है कि छतरपुर का कविता-मंच अपनी एक खास अहमियत रखता है।

विचारगोष्ठी में बहस का कोई खास मुद्दा न होने के कारण वह तेजी और गहराई नहीं थी जिसकी आश थी। वैसे भागीदार थी सर्वश्री राधावल्लभ शर्मा, गंगा प्रसाद बरसैंयाँ, नर्मदा प्रसाद गुप्त और श्रीनिवास शुक्ल की, पर सभी ने महाकवि के कृतित्व के भिन्न-भिन्न पक्षों को लिया था। इतना निश्चित है कि कुछ विचार नये और तुलसी-समीक्षा को आगे बढ़ाने वाले थे। जैसे कि नर्मदा प्रसाद गुप्त का यह कहना कि तुलसी की चेतना और भाषा पर चित्रकूट का असर ज्यादा है। तुलसी ने चित्रकूट के भावारूप को ही अपने काव्य में अपनाया है, इस पर अभी और विश्लेषण की जरूरत है। इसी तरह श्रीनिवास शुक्ल का यह मानना कि तुलसी का काव्य आपात्कालीन परिस्थितियों में एक कवच का काम करता है, आज के संक्रमणकाल में उनके काव्य की उपयोगिता कितनी जरूरी है और किस दिशा में इस पर और विमर्श की गुंजाइश है। गंगाप्रसाद बरसैंयाँ ने तो एक दो चौपाइयों का विश्लेषण ऐसे प्रस्तुत कर दिया, जैसे एक आलोचक के पीछे एक गंभीर प्रवचनकर्ता बोल रहा हो। बहरहाल ऐसे विश्लेषण भी चमत्कारिक असर छोड़ते हैं।

———

इंगलिश डायलेक्ट डिक्शनरी

(इंगलिश स्थानीय भाषा-कोश)

कृष्णानंद गुप्त

इधर कुछ दिनों से हिन्दी में स्थानीय भाषाओं के कोश-निर्माण की ओर हमारा विशेष ध्यान आकर्षित हुआ है। ऐसी दशा में यहाँ हम अंग्रेजी के प्रसिद्ध कोश इंगलिश डायलेक्ट डिक्शनरी (इंगलिश स्थानीय भाषा-कोश) का परिचय पाठकों को देना चाहते हैं। जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, यह अँग्रेजी की स्थानीय अथवा कहना चाहिए आंचलिक भाषाओं का कोश है और आज से ठीक छियासी वर्ष पूर्व यानी सन् १८९६ में छः वृहत् खंडों में निर्मित होकर प्रकाशित हुआ था। इसके निर्माण की कहानी अत्यंत रोचक और शिक्षाप्रद भी है। इसे इंगलिश डायलेक्ट सोसायटी (इंगलिश स्थानीय भाषा सभा, १८७०) ने तैय्यार करवाया था। यह अनुभव करके कि अँग्रेजी की शुद्ध स्थानीय बोलियाँ शीघ्र कालग्रस्त होने जा रही हैं, उसने उनका एक कोश बनाने का निश्चय किया। इस प्रकार उसने अपने यहाँ की बोलियों की मूल्यवान् सम्पदा को सदैव के लिए सुरक्षित ही नहीं रख दिया, बल्कि उसे अध्ययन के लिए सुलभ भी बना दिया।

कोश-निर्माण की यह योजना चालू की थी प्रसिद्ध भाषाविद् वाल्टर विलियम स्कीट ने। अँग्रेजी की 'एटामोलोजिकल डिक्शनरी' (व्युत्पत्ति कोश) के रचयिता के रूप में उनका नाम विख्यात है। उन्होंने कोश के अंदर अँग्रेजी की समस्त बोलियों के शब्दों और मुहावरों आदि को स्थान देने का निर्णय लिया। इसके लिए इंगलेंड के साथ ही वेल्स और आयरलेंड को भी लिया गया, कोई भी जिला छोड़ा नहीं जायेगा, यह भी उन्होंने तै किया। इस निर्णय के अनुसार सन् १८७३ में सामग्री के संकलन और उसे एक स्थूल रूप में अकारादि क्रम से

सजाकर रखने का कार्य आरंभ किया गया। यह लगातार सत्तरह वर्षों तक चलता रहा। तत्पश्चात् संकलित सामग्री के चयन और सम्पादन के लिए एक सुयोग्य और अधिकारी व्यक्ति की तलाश शुरू हुई। स्कीट की नजर विख्यात भाषाविद् जोजेफ राईट की ओर गई। ये पहले एक साधारण स्कूल मास्टर थे। बोलियों की छानबीन में रुचि रखते थे। जर्मनी जाकर भाषाविज्ञान का विशेष अध्ययन किया। वहाँ से वापिस आकर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान के अध्यापक बन गये। स्कीट का बुलावा मिलाने के समय वे भाषाओं के सुप्रसिद्ध और प्रकांड विद्वान् मैक्समूलर के सहकारी के रूप में कार्य कर रहे थे। उन्होंने सहर्ष कोश के संपादन का भार ग्रहण करना स्वीकार कर लिया और ऑक्सफोर्ड से चले आये।

आकर उन्होंने सोसायटी के कार्यालय में सामग्री के अंबार लगे देखे। कार्ड साईज की दस लाख से भी कुछ अधिक सिलपें (चिन्दियाँ) वहाँ मौजूद थीं। प्रत्येक पर एक शब्द-नाम, उसका उच्चारण, अर्थ, बोले जाने का स्थान एवं यथा-वश्यक प्रयोगात्मक वाक्य लिखा हुआ था। कुल सामग्री का वजन लगभग एक टन (करीब एक हजार किलोग्राम) था। अकेले (एस) अक्षर की सिलपें सौ किलो-ग्राम थीं। इस विशाल सामग्री को देखकर किसी भी प्रकार आतंकित होना तो दूर रहा, राईट साहब ने उसे अपने उद्देश्य के लिए बहुत कम पाया। वे स्वयं अपनी पत्नी को लेकर शब्द-संग्रह के लिए ब्रिटेन के गाँवों में निकल पड़े। साथ ही और अधिक सहायता के लिए लोगों के पास सर्कुलर भी भेजे। उनकी अपील पर छः सौ से भी अधिक व्यक्तियों ने विविध प्रकार की सामग्री भेजकर उनकी उत्साह-वृद्धि की। संग्रहकर्त्ताओं में सभी वर्गों के लोग थे, लेखकों और विद्वानों से लेकर साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। कार्यकर्त्ताओं से दो विशेष बातों का ध्यान रखने को राईट साहब ने कहा था। प्रथम, शुद्ध उच्चारण के लिए वर्तनी (स्पेलिंग) की एकरूपता और नियमबद्धता, दूसरे, लिखावट की स्पष्टता, इसलिए कि किसी नितान्त अपरिचित और विलक्षण वर्तनी वाले शब्द के रूप को स्थिर करने में कठिनाई न हो।

शीघ्र ग्रन्थ के प्रकाशन का प्रश्न सामने आया। इंग्लैंड के कई प्रमुख प्रकाशकों से बात की गई×, किन्तु इतना महत्वपूर्ण कार्य होते हुए भी कोई उसके प्रकाशन में अपना पैसा फँसाने के लिए तैय्यार नहीं हुआ। तब जोजेफ राईट ने, संपादक की हैसियत से, स्वयं अपने प्रयासों से उसके प्रकाशन का बीड़ा उठाया। कुछ पैसा उन्होंने अपने पास से निकाला×, कुछ चंदे से इकट्ठा किया। अग्रिम ग्राहक भी बनाये, जिनकी संख्या छः सौ से भी कुछ अधिक हो गई। दौड़-धूप के पश्चात् छः सौ पाउन्ड (तत्कालीन भारतीय मुद्रा में लगभग नौ हजार रुपये) एकमुश्त और वार्षिक दो सौ पाउन्ड की आर्थिक सहायता भी सरकारी खजाने से मिल गई। इस प्रकार अर्थ की ओर से कुछ निश्चित हो जाने पर कोश की वास्तविक प्रेस कापी तैय्यार करने का कार्य आरंभ किया गया।

एक बड़े प्रतिष्ठित प्रेस ने अपनी इमारत का एक बड़ा कमरा राईट को किराये पर दे देने की उदारता दिखाई। वहाँ उन्होंने अपना सम्पादकीय कार्यालय जमाया। कई सुयोग्य सहकारी रक्खे गये। शुरू में राईट साहब स्वयं लिखने का कार्य बहुत कम किया करते। केवल सहकारियों को कोश-निर्माण की तकनीकी सूचनायें देते रहते; ऐसा करो, ऐसा न करो, इत्यादि। बाद में उनके काम की सावधानी से जाँच करते।

कोश के काम में सहायता के लिए विविध प्रकार के सैकड़ों संदर्भग्रन्थ, शब्दावलियाँ और पाण्डुलिपियाँ एकत्र की गई थीं। जार्ज इलियट, ब्लैकमूर, स्काट, हार्डी, स्टीवेन्सन आदि की समस्त रचनायें पढ़ी गई थीं और उनमें से आँचलिक शब्दों के प्रयोग और मुहावरे छाँटे गये थे। पशु-पक्षियों, वनस्पतियों, घरेलू चिकित्सा और कृषि तथा उद्योग-संबंधी जितना, जो कुछ भी साहित्य उपलब्ध हो सका, वह सब देखा गया था।

कुल मिलाकर तेईस वर्षों तक इस महान् संदर्भ-ग्रन्थ के लिए संग्रह-कार्य हुआ। इंग्लैंड, वेल्स और आयरलैंड, के दस हजार से भी अधिक व्यक्तियों ने उसके निर्माण में हाथ बटाया। शब्दों के अर्थ, उच्चारण और प्रयोगों आदि के

स्पष्टीकरण के लिए बारह हजार से भी कुछ ज्यादा जिज्ञासामूलक पत्र (क्वेरीज) लोगों के पास भेजे गये। करीब-करीब सबके संतोषजनक और अभीष्ट उत्तर संपादक को प्राप्त हुए।

ग्रन्थ का प्रथम खंड सन् १८९६ में छपकर प्रेस से बहर आया। चारों ओर धूम मच गई। सभी ने मुक्त हृदय से उसका स्वागत किया। प्रशंसा के पुल बांध दिये। शेष पांच खंड एक-एक करके अगले आठ वर्षों के भीतर यानी सन् १९०५ तक तैय्यार होकर लोगों के सामने आ गये।

कोश के सहों खंडों को देखकर एक भाषाविद् ने उछ्वासित होकर कहा— 'संसार के किसी भी राष्ट्र के पास ऐसा अनूठा और उच्चकोटि का संदर्भ ग्रन्थ नहीं होगा।' एक दूसरे विद्वान् ने अपने देश (इंग्लैंड) के लिए उसे महान् गौरव की वस्तु बताया।

क्या हिन्दी में भी कभी इतने श्रम, लगन, अध्यवसाय, और सैकड़ों स्वार्थत्यागी और भाषा प्रेमी कार्यकर्त्ताओं के सम्मिलित प्रयास से कोई कोश निर्मित होगा?

—गरौठा, झाँसी, उ० प्र०

———

समाचार पत्रों की कतरनें : परख-परखाव

मधुकर और लोकवार्ता के बाद मन प्राणों के आकाश में केवल बांझ बदलियों ही शेष रहीं थी और अन्तराल के बाद ठुमक चली जब मामुलिया, जुड़ा गई जी की आँखें। एक दृष्टि में भ्रम हुआ कि सर्वोत्तम हिन्दी डाइजेस्ट सामने है। पृष्ठ पलटे, पढ़े और पाया कि यह बुन्देली की सर्वोत्तम डाइजेस्ट है।

—दैनिक नवीन दुनियां, जबलपुर

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका मामुलिया बुन्देली बोली के विकास एवं अछूती सामग्री को प्रकाश में लाने का अप्रतिम प्रयास है। पत्रिका का कलेवर विविधता से पूर्ण है। छपायी एवं बाह्य आकर्षण चिताकर्षक है। विज्ञापनों की भरमार न होने से पत्रिका फिरहाल व्यावसायिकता से कोसों दूर है। सम्पादक ने सामग्री के चयन में दूरदर्शिता एवं श्रम का परिचय दिया है।

—दैनिक हिन्दी हितवाद, जबलपुर

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा प्रो० (डॉ०) नर्मदा प्रसाद गुप्त के सम्पादन में बुन्देलखण्ड की प्रथम प्रतिनिधि हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका "मामुलिया" का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ है, इसमें बुन्देली भाषा, साहित्य, संस्कृति, कला व इतिहास सम्बंधी विविध सामग्री का समायोजन किया गया है। (हि० स०)

—दैनिक भास्कर, भोपाल

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर द्वारा प्रकाशित हिन्दी त्रैमासिक 'मामुलिया' के लगातार एक वर्ष तक प्रकाशित चारों अंकों की सराहना राज्य तथा उसके बाहर सर्वत्र हुई और हो रही है। चौथा अंक - फाग-विशेषांक तो अति उत्तम बन पड़ा है, जिसकी सामग्री अति रोचक और ज्ञानवर्धक है।

—दैनिक युगधर्म, जबलपुर

स्पष्टी·

बुन्देलखण्ड की प्रतिनिधि त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका के अब तक प्रकाशित सभी अंकों की सामग्री संग्रहणीय और पठनीय है।

—साप्ताहिक नया संसार, मुजफ्फरनगर

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर की मुख-पत्रिका 'मामुलिया' पर आयोजित समीक्षा गोष्ठी में सर्वश्री सरयू प्रसाद गुप्ता, सुभाष कुमार श्रीवास्तव, डॉ० राम गोपाल गुप्त, सुरेन्द्र नाथ पाण्डेय, राम कृष्ण विमलेश, अमितेन्द्र गुप्त, उमाशंकर शुक्ल, देवेन्द्र नाथ खरे, अवध बिहारी गुप्त आदि विद्वान वक्ताओं ने 'मामुलिया' को बुन्देली भाषा, संस्कृति, कला, इतिहास आदि विविधताओं का अजायबघर बताया और कहा कि 'मामुलिया' बुन्देली लोक साहित्यिक चेतना की अद्भुत मिसाल है।

—दैनिक कर्मयुग प्रकाश, उरई, बांदा (उ० प्र०)

"मामुलिया" बुन्देलखण्ड जनपद की कला, संस्कृति, साहित्य एवं इतिहास के साथ भाषा को प्रस्तुत करने में समर्थ है और उस दिशा में उसका साहसिक प्रयास उल्लेखनीय है। अन्य भाषा-भाषी प्रांतों की भांति हम सभी को ऊपर उठाने में अपना व्यापक सहयोग देना चाहिए।

—दैनिक ओरछा टाइम्स, टीकमगढ़

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर द्वारा प्रकाशित "मामुलिया" त्रैमासिक ने फाग विशेषांक के साथ एक साल की सफल यात्रा पूरी कर ली है। उसका हर अंक शोधपूर्ण सामग्री एवं उपयोगी सृजन से युक्त रहा है। यही एक मात्र पत्रिका है, जो बुन्देली भाषा-संस्कृति को उजागर करने में पूर्ण समर्थ है। वर्ष भर की यात्रा में इसने कई नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं।

—दैनिक राष्ट्रभ्रमण, छतरपुर

"मामुलिया" जैसी बुन्देली संस्कृति की प्रतिनिधि पत्रिका के श्लाघ्य प्रकाशन के बाद बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर ने अग्रवाल धर्मशाला ट्रस्ट के सहयोग से हरवर्ष एक साहित्यकार के सम्मान की घोषणा दूसरा स्तुत्य सफल प्रयास है।

—दैनिक शुभ भारत, छतरपुर

—०—
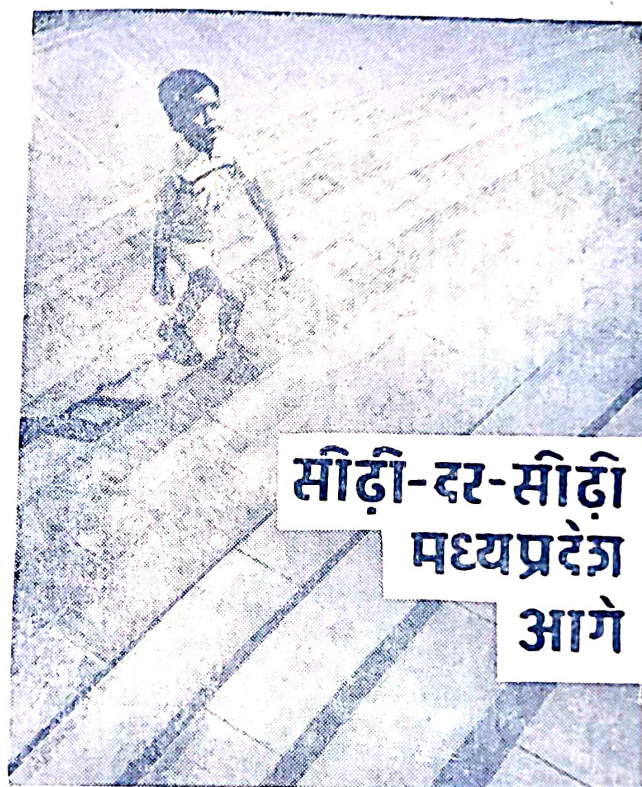
बुंदेली फागों के इतिहास
बुंदेली फागों के विश्लेषण
के लिये ऐतिहासिक ग्रंथ

बुंदेली फागकाव्य : एक मूल्यांकन
सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, डा० वीरेन्द्र निर्झर

मूल्य : रु० बीस मात्र

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी
छतरपुर—४७१००१, म० प्र०